॥ श्री श्री ओंकार सहस्त्र वाणी ॥

प्रथम खण्ड

-: संङ्कलक :-

त्रिदण्डी स्वामी माधव रामानुज जीयर

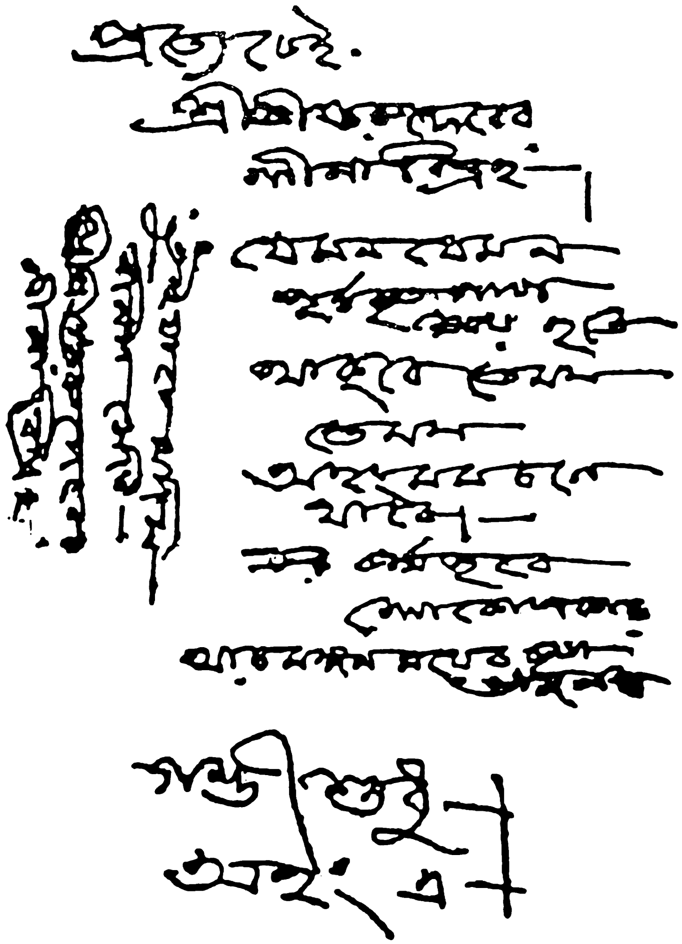

।। श्री श्री ओंकार सहस्रवाणी ।।

(प्रथम खंड)

अनुवादिका

श्रीमति सुधा सोमानी

एवं

श्री कुमुदिनी खैतान

प्रकाशक :-
अखिल भारत जयगुरु सम्प्रदाय

प्रथम प्रकाश : दीपावली

प्राप्ति स्थान :- १) महामिलन मठ
कलकत्ता-३५
२) श्री राधाश्यामराय मंदिर
धीर समीर कुंज (वंशीवट)
बृन्दावन-२८११२१
३) ऋषिकेश आश्रम
मुनि-की-रेति, ऋषिकेश, उ.प्र.
४) ओंकार मठ, ओंकारेश्वर, खांडवा, म.प्र.
५) विठुर, लवकुश आश्रम,
पो :- विठुर, कानपुर, उ.प्र.

सेवा-३० रुपये

सूची पत्र

	विषय	पृष्ठ
१.	भूमिका	१
२.	संकलक का निवेदन	९
३.	उत्सर्ग	१३
४.	वेदा विभिन्ना	१४
५.	मुख्य साधन	१५
६.	श्री भगवान के दो चरण	१६
७.	क्रोध जय उपाय	१७
८.	नाम	१८
९.	प्रणाम	४१
१०.	कदाहार	४३
११.	सहधर्मिणी	४५
१२.	ब्राह्मण जीवन लक्ष्य	४७
१३.	नीच व्यक्ति का लक्षण	४८
१४.	विक्षेप	४९
१५.	जन्म मरण	५०
१६.	स्वप्न का राज्य	५१
१७.	काम रिपु	५३
१८.	स्थूल सूक्ष्म कारण देह	५५
१९.	माला तिलक	५६

२०.	आत्म दर्शन	५७
२१.	मन स्थिर के उपाय	६०
२२.	शान्त दास्यादि भाव	६२
२३.	सुषुम्ना पथ	६५
२४.	दोष दर्शन	६९
२५.	पितृ मातृ सेवी	७१
२६.	भगवत्सेवा अतिथि सेवा-संसार कर्ता	७३
२७.	सती नारी	८१
२८.	जिस जिस आचरण से नारीगणों का सतीधर्म क्षुण्ण होता है	८६
२९.	सती का आचरण	८८
३०.	स्त्री का सर्वनाश करनेवाले हत भाग्य पति के लक्षण	९०
३१.	सधवा कल्याणकामिनी का कर्तव्य	९२
३२.	कल्याणकामिनी का कर्तव्य	९६
३३.	गृहस्थ	९८
३४.	साधु	११२
३५.	ब्रह्मचारी	१२२
३६.	शास्त्र, धर्म और सदाचार	१२५
३७.	आहार	१३८
३८.	यथाकाल उपासना	१५४
३९.	दोष दर्शन दोष	१६०
४०.	मन स्थिर करने का उपाय व साधन	१६३

४१.	हृदय-कमल	१७१
४२.	भारत के ब्राह्मण	१७३
४३.	स्वाध्याय	१७६
४४.	श्री श्री रामानन्द परीक्षा परिषद	१७९
४५.	संस्कृत शिक्षा	१८१
४६.	योग जपादि	१८४
४७.	कुण्डलिनी जागरण अवस्था, तपस्या	१८८
४८.	विवाह संस्कार	१९६
४९.	विविध	२००
५०.	प्रातः मध्यान्ह सन्ध्याकाल कृत्य	२०३
५१.	वर्ण वर्जित	२०५
५२.	स्त्रीमुख दर्शन और परिणाम	२०६
५३.	संसार त्याग नही	२०८
५४.	त्रिविध ऋण	२१०
५५.	पर स्त्री संग	२२०
५६.	भस्म व तिलक धारण, परमाणु	२२३
५७.	मंत्र जप लेखन	२२६
५८.	पर निन्दा	२२७
५९.	शास्त्र व्याख्या	२३४
६०.	सत्य कथा	२३८
६१.	'सब तुम्ही हो' साधन	२४३
६२.	कलि धर्म	२५०
६३.	सिद्धियाँ	२५२

६४.	बाह्य पूजा	२५४
६५.	हिन्दू कुल स्त्री	२५६
६६.	गुरु-मंत्र-इष्ट	२५७
६७.	श्रद्धा	२५८
६८.	मौन साधन	२६१
६९.	मंत्र शेष	२६१
७०.	ओंकार आत्मा	२६३
७१.	आहार व शरीर रक्षा	२६५
७२.	इन्द्रिय अपव्यवहार	२६८
७३.	नशा	२६९
७४.	प्राण सूर्य गति सम्बन्धक आहार	२६९
७५.	जीवन मुक्त का दृष्टिपात	२७२
७६.	सहज-साधन-प्रणाम	२७२
७७.	त्याग	२७४
७८.	सेवा	२७५
७९.	परमाणु संक्रमण	२७७
८०.	आसन	२७९
८१.	विविध उपदेश	२८०
८२.	वर्तमान समस्या	२८६
८३.	सेवा निष्कामकर्म व चित्त शुद्धि	२८७

|| श्री श्री गुरवे नमः ||

भूमिका

श्री श्री ओंकार सहस्रवाणी

युग पुरुष अनंत श्री ठाकुर ओंकारनाथ देव का समग्र जीवन ही उनकी वाणी सुदीर्घ निरन्तर साधना के द्वारा उन्होंने निज जीवन में जो अनुभव किया उसको उन्होंने जगत कल्याणं के लिये छोटे बड़े विभिन्न ग्रंथों के रुप में, तथा शतसहस्र पत्रों के रुप में लिपिबद्ध किया है। उन्होने शास्त्र निष्णात प्रज्ञा से इस आध्यात्म अनुभूति को सुदृढ़ किया है। इनकी लेख मालाओं के गुच्छों में, प्रज्ञा तथा उपलब्धि दोनों, मणि कांचन संयोग के सदृश प्रमाण मिलता है।

किन्तु विशाल आकार की समग्र श्री श्री ओंकारनाथ रचनावली व पत्रावली का एक साथ एकाग्रचित्त से पाठ करने का समय तथा सामर्थ्य दोनों दुर्लभ है। परन्तु आध्यात्मिक जगत के उसपार जाने के लिये श्री ठाकुरजी की यही अमूल्य वाणीमाला का साहचर्य एक मात्र

अपरिहार्य वस्तु है। इसी नित्य प्रयोजनीय उनकी कथा, मन में विवेचना करके ही श्री श्री ठाकुर के नित्य संगी, उनकी अध्यात्म साधना का सुयोग्य साधक व वाहक, सर्व-जन-पूज्य त्रिदण्डी स्वामी माधव रामानुज जी महाराज, श्री श्री ठाकुर की अध्यात्म रचनाओं के समुद्र की बीच में से निपुण डुबकी लगानेवाले के समान उद्धार करके, अत्यन्त प्रयोजनीय सहस्र से भी अधिक दुर्लभ मणि रत्न ले आये हैं, जो "श्री श्री ओंकार सहस्रवाणी" नाम से प्रकाशित हो रही है। उनके इस सहृदय, शुभ प्रयत्न द्वारा, साधक साधिकाओं का बहुत दुर्गम कण्टकाकीर्ण साधन पथ कुसुम-विस्तीर्ण हो, यही मेरी प्रार्थना तथा प्रत्याशा है। दुर्गम साधन-पथ का आर्य-ऋषि-गण ने सुविवेचित कारण से ही "क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया" बोलकर वर्णन किया है। यह पथ गंभीर, गहन, निःसन्देह, किन्तु दुर्निवारणीय है इसका आकर्षण अप्रतिरोद्ध है इसका आहवान, इसीलिये युग युग में भक्तगण सब कुछ जलाञ्जलि देकर परम प्राप्ति के लिये व्याकुलता लेकर बाहर निकल आते रहते हैं। जो उसे नहीं पा सके वे रुद्ध द्वार गृह-कक्ष में अथवा मठ-मन्दिर में एक एकान्त कोने में, अथवा निर्जन नदी-प्रान्त में हृदय में एक ही व्याकुलता को लेकर आसन बिछा लेते हैं। जिनके पथ में वह भी संभव

नहीं हुआ, जो संसार के जटिल कुटिल चक्कर में नित्य निमग्न रहते हैं, ईश्वर आराधना का कोई भी आग्रह अन्तर में जिन्होंने अनुभव नहीं किया है, उनके प्राण भी किसी न किसी समय, किसी न किसी शुभ लग्न में निश्चय ही यह बोल कर क्रन्दन करते रहते हैं -

"हेथा नय, हेथा नय
अन्य कोथा-अन्य कोनो खाने"
(रवीन्द्रनाथ ठाकुर)

इसी लिये यही क्रन्दन शाश्वत क्रन्दन है। साधन-पथ के अधिकारियों के शास्त्रकार गण ने जिस प्रकार अधम, मध्यम, उत्तम और अधिमात्र ये प्रधान चार भाग कर दिये हैं उसीप्रकार उनकी व्याकुलता की मात्रा का परिमाप करके, निज निज स्थिति के अनुसार अथवा जीवनयात्रा-तारतम्य के अनुयायी आचार्यगण ने विभिन्न प्रकृति के उपदेश निर्देश किये हैं :-

साधारण गृहस्थ के प्रति उनके जो उपदेश, ब्रह्मचारी के प्रति उपदेश से निश्चय ही भिन्न होगा। सती नारी के प्रति जो उपदेश विधवा के प्रति उपदेश में निश्चय ही कुछ पार्थक्य रहेगा। इसीलिये "श्री श्री ओंकार सहस्रवाणी" के प्रति प्रथम दृष्टिपात करते ही हमने देखा कि

वास्तविकता का अनुगमन करनेवाले विचार में भी सूक्ष्म-बुद्धि स्वामीजी महाराज ने समग्र संकलन को भिन्न भिन्न अध्यायों में भाग करने का प्रयत्न किया है जैसे ब्रह्मचारी, गृहस्थ, सतीधर्म, विधवा कल्याण कामी कर्तव्य, प्रभृति।

"आहार समस्त साधना मूल है, भोजन नही, भजन" (भोजन ही अन्य निरपेक्ष साधन है।) यही श्री ठाकुर जी का महावाक्य है। केवल मात्र सात्विक शुद्धाहार द्वारा ही ईश्वर विषयक ध्रुवा-स्मृति लाभ किया जा सकता है। इसी कारण देखा जाता है पूज्य स्वामी ने 'आहार' नामक शीर्षक में एक स्वतन्त्र अध्याय की रचना की है। दुर्गम साधन जगत में दुरूह घात-प्रतिघात, अन्तर द्वंद्व -बहिर द्वंद्व, उच्चाशा-हताशा, निम्नभूमि-उच्चभूमि के पार होकर आने पर कठोर तपस्या के साथ साथ अतुलनीय श्री गुरु सेवा द्वारा साधना के लक्ष्य में उपनीत हो गये हैं। पूर्ण मनस्काम हो गये हैं। सिद्ध महात्मा श्रीमद् माधव स्वामी जी महाराज-और एक भाव से वे नित्य सिद्ध श्री भगवान ओंकारनाथ देव की जगत पावनी लीला के नित्य संगी रहे हैं। इसी कारण जीवों के कल्याण के लिये निरन्तर प्रयास और गंम्भीर साधना के साथ साथ उत्तम स्वाध्याय उनका नित्य-साथी हुआ है। इसी कारण वे जिस प्रकार जानते हैं साधन जगत की प्रधान

बाधायें क्या क्या हैं, उसी प्रकार वे जानते हैं उससे मुक्त होने के लिये उपाय क्या क्या हैं। इसी लिये उन्होंने सबसे प्रथम जोर दिया है 'नाम' के ऊपर। "नाम" नामांकित प्रथम अध्याय उसका प्रमाण वाहक है। क्या भक्त, क्या योगी, क्या ज्ञानी, क्या गृहस्थ, क्या ब्रह्मचारी, क्या पापी तापी, क्या पुण्यात्मा महात्मा सबके पक्ष में परम साधन यह 'नाम' साधन है।

श्री ठाकुर उस नामाश्रय की बात पुनः पुनः निर्देश कर चुके हैं। "सर्वदा नाम करके, मन की उन्मत्त चिन्ता, और शास्त्र पथ में चलने की बाधा, 'नाम' की तोप से उड़ाकर चलो, चलो, आगे चलो"

(ओंकार सहस्र वाणी-१७

आनन्द तो हाथ की मुट्ठी में है, आनन्द से गठित है श्री भगवान का नाम, जो जितना करेगा वह उतना ही आनन्द प्राप्त करेगा।

(ओंकार सहस्रवाणी ६०)

नाम कल्पतरु। नाम के पास जो चाहोगे सो पाओगे-पाओगे ही। एक कामना करके यदि कोई नाम करे तो उसकी सौ कामनायें पूर्ण होती हैं।

(ओंकार सहस्रवाणी ८२)

नामावतार ओंकारनाथ देव की धीर प्रत्यय पूर्ण और ज्वलंत अभय युक्त यही वाणी

"विषय-विष का आत्यंतिक नाशकारी, गृहस्थ का अकृत्रिम बन्धु, मुमुक्षु के उपदेष्टा नर नारी गणों का परम पाथेय, शांन्त के शान्ति स्वरुप जीवनानिल भवरोग की महौषध रुप रामवाण"

(ओंकार सहस्रवाणी उत्सर्ग पत्र)

एक ही साथ विस्मयाविष्ट होकर हम लोग लक्ष्य करते हैं कि पूज्य स्वामीजी ने जिस प्रकार साधारण अधिकारी के लिये श्री ठाकुर के साधारण उपदेश अधिकतर संकलन किये हैं। उत्तम वा अधिमात्र अधिकारीगणों के लिये जो नाद ज्योति-राज्य में प्रवेश करके योगारुढ़ वाच्य हुये हैं। उनके लिये स्वामीजी के संकलन भण्डार में हमने पाया है, अर्पूव जगत का संवाद।

"कुण्डलिनी जब क्रियाशील होती है, अखण्ड नाद चलता रहता है उस समय उस नाद का गति रोध करने की सामर्थ्य साधक में नही रहती है, कभी निम्न कभी ऊपर में नाद ब्रह्म लीला करते रहते हैं।"

(ओंकार सहस्रवाणी-६७८)

"साधक सर्व संग त्याग करके जब अवस्थान करता है उस समय उस नाद की पृथक पृथक ध्वनि आविर्भूत होती रहती हैं। साधक सुने या न सुने - ध्वनि-विराम नहीं होता है, कभी मेघ, कभी भ्रमर

कभी इंजन, कभी झरना, कभी जय गुरु, कभी ॐ गुरु, कभी गुरु गुरु रव में खेल करती हैं।

(ओंकार सहस्रवाणी-६७१)

साधकगण जैसे भिन्न जाति के आचार्य गण भी वैसे ही। युगत्राता, उपमा प्रिय श्री भगवान रामकृष्णदेव, जिस प्रकार वैद्य की तरह, भव-रोग-वैद्य-गण को (आचार्यगण को) तीन श्रेणियों में विभक्त किया है, अधम मध्यम व उत्तम आचार्य। व्यावहारिक जीवन में देखा जाता है - अधम वैद्य रोगी को औषध खा लेना बोलकर घर चले जाता है, मध्यम श्रेणी वैद्य औषध खाने के लिये कितना अनुरोध उपरोध करता है। उत्तम वैद्य रोगी के गले में पाँव रखकर भी दवा खिला देता है न खिला के छोड़ता नहीं वह उत्तम वैद्य है। श्री भगवान ओंकारनाथ देव निःसन्देह भाव से यही उत्तम श्रेणी के आचार्य हैं इसी कारण हम देखते हैं साधन भजन के विषय में, नियम श्रृंखला के विषय में वे कितने कट्टरपंथी हैं। कितने निष्ठावलम्वी हैं। साधक के पक्ष में जो कुछ कल्याणकर है श्री ठाकुर उसे जनाने में कभी भी कुण्ठित नहीं थे। इसी कारण 'श्री श्री ओंकार सहस्रवाणी' में भी हम बज्र समान कठोर सीताराम के एक बहुदृष्ट रुप का संधान पाते हैं। संकलन की पंक्तिशः पंक्ति में हम सुन रहे हैं श्री सीताराम की कितनी सावधान वाणी

कितनी भर्त्सना वाणी, कभी कभी कुछ स्नेह प्रीति के साथ कभी कभी कुछ व्यंग विद्रूप के साथ साथ, क्षण क्षण में गर्जना कर उठे हैं जिसके पश्चात् अनुभवी साधक मात्र उपलब्धि कर सकेगा, परम प्रेममय परमपिता की एक अपलक कल्याण दृष्टि ।

"विश्वका कल्याण हो
विश्वका कल्याण हो
विश्वका कल्याण हो"

किंकर विट्ठल रामानुज
सर्वाधीश अखिल भारत जयगुरु सम्प्रदाय
महामिलन मठ
झूलन पूर्णिमा
१८ अगस्त १९९७

॥ संकलक का निवेदन ॥

श्री श्री ठाकुर जी की बात बोलने के लिये अवशभाव से "परमहंसदेव" की बात आ जाती है। उनकी बात देकर श्री श्री ठाकुर की अनेक बातें समझाने में बहुत सरल हो जाती हैं।

"उपमा रामकृष्णस्य"

अचिन्त्य कुमार - बोला है - यह बात अतिशयोक्ति नहीं है। इसी कारण उनकी बात देकर श्री ठाकुर की बात बोल रहा हूँ।

वे कहते हैं मैंने सोलह आना (सोलो टाँ) किया हैं। तुम लोग एक आना करोगे तो हो जायेगा, काम बन जायेगा।

श्री श्री ठाकुर मनुष्य के श्रेय-लाभ के लिये सोलह आना बोले हैं।

वैष्णव-शैव-शाक्त-सौर-गाणपत्य, गृहस्थ, ब्रह्मचारी, साधु, वाणप्रस्थी, सन्यासी, सती, असती, पितृ-मातृ-भक्त, देशभक्त, कर्म-भक्ति-ज्ञान, मंत्र, हठ, लय, योगादि एवं नामयोग में, समस्त योगों की समाप्ति-घोषणा करके, अद्भुत, अपूर्व दृष्टांत स्थापित किया है।

उनकी ये अमृतमयी वाणी समूहों में एक वाणी भी यदि किसी के अंतर मर्म में प्रवेश कर जाय तो वह धन्यातिघन्य हो जायेगा–जायेगा ही–यह हम लोगों का दृढ़ विश्वास है।

प्रत्येक वाणी प्राणमय, उनके अनुभूत सत्य में प्रतिष्ठित है।

प्रत्येक मनुष्य, जाति, धर्म, सम्प्रदाय निर्विशेष अपना अपना कल्याण सम्पादन में समर्थ होगा। यही आशा लेकर हम लोग श्री श्री ठाकुर जी की कृपा से उनके उपदेश का प्रथम खण्ड हिन्दी संस्करण के प्रकाशन के लिये प्रयास कर रहे हैं।

वाणी–संग्रह में श्री अजय घोष ने जो सेवा की वह अतुलनीय है।

जनादर्न भाई की भी सेवा स्मरणयोग्य है। श्री श्री गुरुदेव की आदरणीया सेविका श्रीमती सुधा सोमानी व श्री कुमुदनी खेतान माँ अति अल्प समय में श्री श्री ओंकार सहस्र वाणी का हिन्दी अनुवाद करके श्री श्री ठाकुर की महान सेवा का अंश ग्रहण करके अपने को धन्य किया है। उनके समीप चिर कृतज्ञ रहूँगा।

एवं श्री गणेशदत्त जोशीजी अध्यापक राजकीय इण्टर कालिज पाँखू जनपद पिथौरागढ़,

ये निरभिमान महानुभव समग्र हिन्दी अनुवाद का प्रत्येक पंक्ति व पंक्ति का संशोधन करके एवं "भूमिका' "संकलक का निवेदन", "उत्सर्ग पत्र", "आनुष्ठानिक सूचीपत्र" अनुवाद करके, संकलक को धन्यातिधन्य किया है। उनके प्रति अशेष कृतज्ञता ज्ञापन कर रहा हूँ। प्रभु उन पर कृपा करें।

अखिल भारत जय गुरु सम्प्रदाय के सर्वाधीश श्रीमद् विट्ठल रामानुज जी महाराज ने सुन्दर भूमिका लिखकर संकलक को चिरकृतज्ञता-पाश से आबद्ध किया है। किन्तु भूमिका में उन्होंने ऐसी ऐसी भाषा का प्रयोग किया है जिसे छपनें के लिये संकलक स्वयं संकोच अनुभव कर रहा हैं।

लेकिन वे श्री श्री ठाकुर जी के भाई के पौत्र हैं। अतः उनके वाक्य, जो कुछ उन्होंने हमारे प्रति शब्द प्रयोग किये वे सब संकलक के लिये आर्शीवाद स्वरुप हैं। श्री श्री ठाकुर की महान कृपा से "श्री श्री ओंकार सहस्रवाणी" का प्रथम हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हो रहा है। अनेक प्रयत्न करने पर भी कुछ भूल या त्रुटि होना स्वाभाविक है। सहृदय पाठकगण उसको क्षमा दृष्टि से देखने की कृपा करें।

अशेष करुणा-वरुणालय श्री श्री ठाकुर सभी का मंगल विधान करें।

यत्कृतं यत्करिष्यामि न तत् सर्वं
मया कृतम् ।
त्वया कृतं तु फलभाक् त्वमेव
मधूसुदन ॥

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

उत्सर्ग

श्री श्री ठाकुर की यह अमृतमयी वाणी समूह विषय-विष का आत्यन्तिक नाशकारी गृहस्थी की अकृत्रिम बन्धु, मुमुक्षु की उपदेष्टा, नर नारी गणों का परम पाथेय, शान्त के शान्ति स्वरुप जीवनानिल, भव रोग के महौषधरुप रामबाण ।

प्रिय रामेशानन्द जी ! आप श्री श्री ठाकुर जी की कथा, वाणी और लीला सुनकर, बोलकर आलोचना करके श्रीमद् भागवत् श्रवणानन्द की तरह विभोर हो जाते हैं। श्री श्री बाबा की बात बोलते बोलते आपका मुख मण्डल आरक्त हो जाता है, सो देखा है ।

श्री श्री ठाकुर की यह अमृत निःसृतमयी "श्री श्री ओंकार सहस्र वाणी" का हिन्दी अनुवाद प्रभु का दिया हुआ, आपके पवित्र नाम पर उत्सर्ग कर रहा हूँ ।

आपकी अन्तरात्मा प्रसन्नता प्राप्त हो ।

श्री श्री ठाकुर का दासानुदास
माधव रामानुज

वेदा विभिन्नाः स्मृतयो विभिन्नाः,
नासौ मुनिर्यस्य मतं न भिन्नम् ।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायाम्,
महाजनो येन गतः स पन्थाः ॥

श्री श्री गुरवे नमः

॥ श्री श्री ओंकार सहस्र वाणी ॥

मुख्य साधन

(१) साधना की शुरुआत होगी "सब तुम्ही हो" बोल कर प्रणाम करने के अभ्यास से, साधना की समाप्ति होगी "सब तुम्ही" इस प्रत्यक्ष दर्शन से ।

(२) पृथक पृथक वेश धारण कर एकमात्र वे ही लीला कर रहे हैं । भजन-साधन उनकी लीला-रहस्य का भेद करने के लिये है । सब उनकी दैवी माया है इसी से अलग अलग बोध होता है ।

(३) मनुष्य अज्ञानवश स्वयं को न जानकर जन्म जन्मान्तर से देह को ही "मैं" समझकर भटक रहा है ।

(४) मनुष्य को शुभ पथ की ओर प्रेरित करने के जैसा उत्तम कर्म दूसरा नहीं है । चेष्टा हो रही है जिससे नर-नारी शुभ पथ पर चल सके । इसके लिये सहायता करनी चाहिये । नाम के जैसा शुभ पथ दूसरा नहीं, नाम संकीर्त्तन चलता रहे ।

(५) जगत में सब कुछ भगवान हैं सभी सेव्य–पूज्य–इस भाव की प्राप्ति के लिये साधन भजन है ।

(६) जब तक संसार "मेरा" है तब तक ही दुःख है जब संसार श्री भगवान का हो जायेगा तब दुःख का लेश भी नहीं रहेगा। गृहस्थी करना ही श्री गुरुदेव की सेवा करना होता है निर्भय होकर गुरु गुरु करते करते संसार रुपी गुरु सेवा करके कृतार्थ हो जाओ ।

श्री भगवान के दो चरण

(७) श्री भगवान के दो चरण है। एक दक्षिण एक वाम। सुख, शान्ति, आनन्द दाहिना पाँव और रोग, शोक दुःख ज्वाला वायाँ पाँव है जब वे जो पाँव बढ़ा दें पकड़कर गुरु–गुरु बस सुख–दुःख का अवसान ।

(८) मनुष्य जब तक भीतर डुबकी नहीं लगा सकता है तब तक उसके कष्टों की निवृत्ति नही होती है। सदा सर्वदा पुकारते पुकारते अपने भीतर डुबकी लगाओ ।

(९) श्री भगवान का हृदय श्री गीता। वह हम कितना समझ पाते हैं उनके शरणागत होने

से वे ही उसे समझा देते हैं हमारा कर्तव्य है उनके अनन्य शरणागत होना ।

(१०) सत्य सर्वदा सत्य है – अग्नि सर्वदा अग्नि है ।

(११) **शिश्नोदर परायण मानव देहधारी पशु जगत का क्या कल्याण कर सकता है ? तुम आये हो विश्व का कल्याण करने । पहले जीवन्मुक्त अवस्था लाभ कर लो तभी तो प्रकृत कल्याण करने में समर्थ होओगे ।**

क्रोध जय-उपाय

(१२) क्रोध को जीतने का उपाय है संकल्प न करना । संकल्प से कामना, कामना प्रतिहत होने से क्रोध होता है । तब इस प्रकार संकल्प से क्रोध नहीं होता है–मैं रामेश्वर जाऊँगा तत्पश्चात् भगवान की इच्छा ।

(१३) क्रोध होता है तो चुप रह कर नाम करना । जब तक क्रोध रहे तब तक बोलना नहीं ।

(१४) क्रोध आने पर शीशे में मुँह देखना । तालाव या गंगाजी पास में हो तो दस

डुबकियाँ लगाना नहीं तो दस लोटा जल सिर पे डालना ।

(१५) पुस्तक लिख चुका सुन रे जननी
पुस्तक के पन्ने पलटती चल ।
होगा मंगल वही जो होना है जब,
नहीं कुछ भी धरा पर जो है अमंगल ॥

(१६) साधना का अर्थ रातों रात बड़ा आदमी बनना नहीं यह जीवन - व्यापी संग्राम है ।

नाम

(१७) सर्वदा नाम करते करते मन की उन्मत्त चिन्ताओं और शास्त्र पथ पर चलने की बाधाओं को नाम की तोप से उड़ा कर चल-चल आगे बढ़े चल ।

(१८) इस युग में उनकी शरण ग्रहण करके नाम करने के अतिरिक्त और कोई पथ नहीं है। "मैं आप के शरणागत हूँ। मैं आपके शरणागत हूँ" इस महामंत्र का जप और उठते बैठते, खाते सोते 'नाम' करना ही परम उपाय है ।

(१९) जगत् की सारी वस्तुयें असत् हैं सत् केवल नाम है।

(२०) राम राम करो, अवश्य शांति लाभ करोगे जैसे दिन के बाद रात, जीवन के बाद मृत्यु सत्य है वैसे ही नामकारी शांति लाभ करते हैं। यही सत्य, सत्य, सत्य! जय सीताराम।

(२१) दुर्गा दुर्गा करो, सदा सर्वदा करो। तुम्हारी सब साधना करना हो जायेगी। कूद कर बड़े होने से कोई लाभ नहीं है। बड़ी बड़ी शास्त्रों की वाणी की पोटली बाँध कर क्या ज्वाला शांत होती है ?

(२२) कैसे भक्त होओगे ? उठते-बैठते, खाते-सोते सर्वदा दुर्गा दुर्गा करो, सीताराम सीताराम करो भक्त हो जाओगे-करो हो जाओगे।

(२३) रस न भी मिले सर्वदा राम राम करने से द्रष्टा भाव से रहा जा सकता है। कैसे जानते हो ? मान लो तुम राम राम कर रहे हो मन मे उठा-जैसे कि सवेरे नींद नहीं खुलती-राम राम राम। सवेरे न उठ सके तो काम ठीक नहीं बनता है राम राम राम, जैसे सवेरे जल्दी जाग सकूँ इसकी

व्यवस्था - राम राम राम। इसी प्रकार सब मनःकल्पित संकल्प-विकल्प सिनेमा के चित्रों की तरह आते हैं और चले जाते हैं मन का खेल पकड़ा जाता है मन और मैं पृथक है यह समझ में आ जाता है। किन्तु नाम-शून्य अवस्था में मन संकल्प विकल्प करके बेहोश कर देता है।

(२४) जो लोग निरन्तर नाम संकीर्तन कर सकते हैं उनको अन्य कोई साधना का प्रयोजन नहीं है। किन्तु कितने जनों को वह सौभाग्य प्राप्त है ? इसी कारण त्रिसन्ध्या गायत्री जप, इष्ट मंत्र जप एवं लीला ग्रंथों का पठन आदि नित्य ही उचित है।

(२५) जो लोग निरन्तर नाम लेकर रहते हैं नाम ही उनहें वक्ष से लगा के श्री भगवान के पास पहुँचा देगा। नाम संकीर्तन द्वारा स्थावर-जंगम पवित्र होता है। नूतन बल का संचार होता है।

(२६) जो जगत् कल्याण की कामना करते हैं उन्हें नित्य कम से कम तीन घंटा नाम संकीर्तन करने की चेष्टा करनी चाहिये।

मनुष्य स्वयं के लिये नहीं आता है। आता है विश्व मंगल के लिये।

(२७) कलियुग में जगत् कल्याण का सहज सरल सुगम आनन्दमय अनुपम उपाय-सुदृढ़ भाव से श्री नाम-सुन्दर का आश्रय करके रहना-नाम और भगवान एक।

(२८) नाम की तोप से रोग, शोक, दुःख, ज्वाला, अभाव, अशान्ति को उड़ाकर अग्रसर होओ। खाते, सोते, उठते बैठते नाम करो-जयनाम-जयनाम। 'चरैवेति चरैवेति' आगे बढ़े चलो, बढ़े चलो, जय सीताराम।

(२९) रत्नाकर राम नाम का उच्चारण नही कर पाता था वह 'मरा-मरा' करते ही कृतार्थ हो गया। अजामिल ने मृत्युकाल में यमदूतों को देखकर, भयभीत होकर पुत्र नारायण को 'नारायण' बोलकर पुकारा उस नामाभास से वह मुक्त हो गया।

(३०) इसीलिये जो कोई नाम जापी, नाम कीर्तन करनेवाला सद्गति को प्राप्त करेगा, इसमें सन्देह नहीं, नाम करते करते देह-मन-प्राण नाममय हो जाने पर नामी

श्री भगवान और ओंकार शब्द ब्रह्म को भी लाभ करता है ।

(३१) इस जगन्नाटक की नाट्यशाला अभिनेता, दर्शक–सभी एक श्री भगवान, एकमात्र वे ही अपनी अपृथक्भूता संगिनी को लेकर लीला कर रहे हैं, उनसे भिन्न जगत् में कुछ भी नही है । नाम कीर्तन करते करते भक्त इसका प्रत्यक्ष कर सकता है ।

(३२) नाम कीर्तन के द्वारा सहज ही ★ नाद का लाभ होता है । भक्त नाम संकीर्तन करते करते अपनी सुध बुध खो कर भगवान के शरणागत हो कर मन प्राण सब भगवान को अर्पण करके भगवान का होकर संसार में रहता है । उसे फिर कोई चिन्ता नही करनी पड़ती है ।

(३३) "हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ॥"

इस महामंत्र का निरन्तर संकीर्तन करो ।

★ अनाहत ध्वनि–आत्म निर्घोष

तुम्हें कुछ भी चिन्ता नही करनी होगी श्री भगवान तुम्हारा सारा भार, ले लेंगे। योगक्षेम वहन करेंगे। तुम निश्चिन्त हो जाओगे। केवल नाम कीर्तन करो। एक भी श्वास वृथा नही जाना चाहिए।

(३४) जगत में जितने भी प्रकार के मंत्र हैं उन समस्त मंत्रों का सम्राट है 'गुरु' नामक मंत्र। इसका आश्रय लिये बिना कोई भी व्यक्ति किसी प्रकार से भी साधन-राज्य में अग्रसर नहीं हो सकता।

(३५) गुरु, गुरु, गुरु वत्सगण - उठते - बैठते, खाते-सोते सर्वदा जप किया करो 'गुरु गुरु गुरु, जो 'गुरु' नाम का आश्रय कर लेता है उसके लिये संसार गोष्पद तुल्य हो जाता है। केवल जप करो- गुरु गुरु गुरु।

(३६) 'ग'कार के उच्चारण मात्र से ब्रह्महत्या का पाप दूर होता है 'उ'कार के उच्चारण करने मात्र से ही जीव आजन्मकृत पातकों से मुक्ति लाभ करता है 'रेफ', उकार एवं विर्सग उच्चारण से कोटि जन्मों के समुत्पन्न सब पातक विनष्ट हो जाते हैं। इस 'गुरु' नाम का जप करके

शिवजी ब्रह्महत्या पाप से, परशुराम जी मातृ हत्या के पाप से एवं देवराज इन्द्र ब्रह्महिंसा के पाप से मुक्त हुये थे।

(३७) जगत की सृष्टि हुई है शब्द से, बाहर में जो कुछ दृष्टिगत होता है वह शब्द की घनीभूत मूर्ति ही है। भीतर में वही शब्द या नाद गुह्य स्थान में परा, नाभि में पश्यन्ती हृदय में मध्यमा, जिहवा में वैखरी रुप में लीला कर रहा है। ये शब्द ही भगवान है।

(३८) वस्तु शक्ति कभी भी श्रद्धा या अश्रद्धा की अपेक्षा नहीं रखती है - नाइट्रिक एसिड अश्रद्धा पूर्वक शरीर पर डालने से भी शरीर दग्ध कर देता है, घृणा भाव से अग्नि में हाथ डालने पर अग्नि हाथ जला देती है। जिस प्रकार अश्रद्धा से भी विष खाने पर मृत्यु होना अनिवार्य है, उसी प्रकार श्री भगवान का नाम जिस किसी प्रकार से भी ग्रहण करने से मनुष्य कृतार्थ होगा ही।

(३९) साधन-भजन योग-याग, तपस्या सभी का उद्देश्य केवल इतना दृढ़ता से जानना ही है, कि हमें कोई स्वाधीनता नहीं है। यह

ज्ञान लाभ करते ही कर्मबन्धन दूर हो जाता है। आनन्द के ऊपर आनन्द का लाभ करता है।

(४०) भक्ति लाभ करने का उपाय है नाम, नाम के द्वारा कलि के जीवों का उद्धार होता है इसी लिये गुणज्ञ, सारग्राही जन कलियुग को बहुत आदर देते हैं। अन्य युगों के प्राणी भी कलियुग में जन्म ग्रहण करने की इच्छा करते हैं।

(४१) शरीर पर दीवाल पर नाम लिखने का विधान मैंने दिया है, इसके द्वारा आत्म कल्याण-जगत का कल्याण होता है। अपने शरीर पर नाम लिखने से शरीर पवित्र होता है। दीवाल पर नाम लिखने से गृह ही पवित्र हो जाता है। नाम और मैं अलग अलग नही है। विग्रह का दर्शन करने से जैसे मनुष्य पाप शून्य हो जाता है वैसे ही दीवाल या किसी की देह पर अंकित नाम देखने से मुझे ही देखना होता है दर्शन करने वाले के चक्षु धन्य हो जाते हैं वह पवित्र हो जाता है।

(४२) भाव से अभाव से अवहेलना-श्रद्धा से, साधु के रुप में ख्याति पाने के लिये और

किसी भी प्रकार से नाम करने से भी 'नाम' नाम करनेवाले को संसार सागर से पार कर देता है ।

(४३) नाम करके प्राण को जय करना चाहिये प्राण की चंचलता ही जीव–भाव है। प्राण जितना ही निश्चल होता जायेगा उतना ही मनुष्य अलौकिक विषय समूह प्राप्त करता जायेगा प्राण नासाभ्यन्तर–चारी होने से ही मुक्त हो जाता है ।

(४४) सभी कर्मों का प्राण होता है नाम । नामशून्य होकर दान व्रतादि करना निरर्थक । दान, व्रत, तपस्या, यज्ञ, श्राद्ध अथवा पितृ तर्पण प्रभृति हरि संकीर्तन बिना समस्त निष्फल। जो पुण्य कर्म कर रहा है नाम संकीर्तन के साथ करने से उन सभी कर्मो का अनंत फल होता है, शीघ्रता से वे लक्ष्य तक पहुँच सकते हैं ।

(४५) तपस्या के प्रभाव से मन और बुद्धि विशुद्ध होने पर ज्योतिर्मय आत्मा मन, बुद्धि को ग्राह्य होती है । इसी का नाम आत्मदर्शन, इन प्राकृतिक चक्षुओं द्वारा आत्मा को नहीं देखा जाता है ।

(४६) नाम करो। नाम ही प्राण को पकड़ने का अव्यर्थ महान जाल है। नाम करने से प्राण–प्राणनाथ–मुझको तक भी भक्त चिर संगी बनाने में समर्थ होता है।

(४७) जितने दिन तक संसार का बंधन दूर न हो उतने दिन प्रतिदिन दो पाँच घंटा क्रमशः मौन काल बढ़ाकर पाँच सात दिवस मौन होकर नादानुसंधान करना चाहिये। तब शान्ति प्राप्त हो सकती है। तत्पश्चात् अनिर्दिष्ट काल तक मौन रहकर नादानुसंधान करने से कृतार्थ हो जाता है।

(४८) अधिकारी और उपासक भेद होने के कारण स्वाध्याय भी अलग अलग होता है कृष्ण भक्त श्रीमद् भागवत, राम भक्त रामायण, देवी भक्त देवी गीता, चण्डी, भगवती गीता, शिव भक्त शिव पुराण, शिव गीता इत्यादि पहले स्वाध्याय करते करते जब भेद मिट जाता है तब जो ग्रंथ अच्छा लगे जिससे हमारा प्राण पिघल जाय वही स्वाध्याय करना कर्तव्य है।

(४९) श्रीमद् भगवद् गीता, उद्धव गीता स्वाध्याय के लिये अति उत्तम ग्रंथ। इनकी तुलना

नहीं है । मैने स्वयं अपने प्राण सम दो सखाओं को उपदेश किया था यदि कोई इन दो ग्रंथों का आश्रय ग्रहण कर ले उससे ही कृतार्थ हो जायेगा ।

(५०) जिनको लिखने की शक्ति है उनका लिखना कर्तव्य है । अधिकारी के अनुसार ध्यान, इष्ट ध्यान, सुषुम्ना का ध्यान करने से आनन्द लाभ कर सकता है सार यह है कि नाद प्राप्त होने से ही ध्यान करना कर्तव्य ।

(५१) जब भगवत्कथा के श्रवण और ध्यान में श्रद्धा उपस्थित होती है तब समझना चाहिये कि वे सद् गुरु की कृपा प्राप्त कर ली है ।

(५२) आस्तिक्य बुद्धि, विश्वास, गुरु कथित साधन मार्ग पर चलने से मैं कृतार्थ हो जाऊँगा – यह दृढ़ निश्चय करके अनन्य भाव से गुरु उपदेशों का पालन जो करता है उसे श्रद्धावान बोला जाता है श्रद्धा ही मनुष्य को अमरत्व प्रदान करती है ।

(५३) श्रद्धा अथवा अश्रद्धा अवहेलना करके भी जो मेरे नाम का गायन करते हैं उसके अंदर में मेरा उत्तम नाम ओंकार नित्य

अवस्थान करता है। नाम श्रद्धा, अश्रद्धा की अपेक्षा न करके कृपा करता है किसी भी प्रकार नाम बोलने, सुनने से मनुष्य धन्य हो जाता है।

(५४) प्रार्थना सभी को करनी होती है। प्रार्थना, योग-ज्ञान प्रभृति के समान ही विशेष साधना है। यदि कोई अन्य दूसरा साधन भजन न करके केवल प्रार्थना करता है तो शीघ्र ही शान्ति लाभ करने में समर्थ हो जाता है।

(५५) जो प्रार्थना नही कर सके उसे अखण्ड नाम जप करना कर्तव्य। चाहे जैसे भी हो मन को मुझ में लगा रखना चाहिये।

(५६) ऐसा सहज उपाय और नहीं है। जिस किसी अवस्था में सोते - बैठते, खड़े होकर - शुचि - अशुचि, जप करने से मनुष्य कृतार्थ होता है इससे अधिक आशाजनक बात और क्या है ?

(५७) साधन भक्ति होती है गुरुदेव ने बोला है नाम करने के लिये, कोई अनुभव प्राप्त करे या न करे - उनकी आज्ञा पालन करूँगा - इस प्रकार दृढ़भाव से नाम करते करते सभी सात्विक भाव आ जाता है।

(५८) सात्विक भाव घनीभूत होने से प्रेम हो जाता है। प्रेमोदय से जगत् ही भगवन्मय हो जाता है।

(५९) जो भक्त जितना ही अग्रसर होंगे वे उतना ही आनन्द प्राप्त करेंगे इसमें कोइ संशय नही है। आनन्द चाहते हो तो अग्रसर होओ, नाम करो।

(६०) आनन्द तो हाथ की मुट्ठी में है। आनन्द से गठित श्री भगवान का नाम, जो जितना करेगा वह उतना ही आनन्द प्राप्त करेगा।

(६१) प्रथम साधक का कर्तव्य है कि प्रातः मध्यान्ह और संध्याकाल में कम से कम एक घंटा करके जप आदि करना चाहिये तत्पश्चात् सत्वगुण की वृद्धि होने पर निद्रा कम हो जायेगी तब मध्य रात्रि में ध्यान करने से प्रभात में उठ सकेगा।

(६२) उचित मुहूर्त को पकड़कर साधन करने से साधना का फल शीघ्र मिलता है।

(६३) प्रातः मध्यान्ह, सन्ध्या, मध्यरात्रि ये चार ही समय साधना के श्रेष्ठतम मुहूर्त हैं। उस समय प्राण स्वतः ही सुषुम्नाभि

मुख – गमन करके अपने आप स्थिर होता है – उसी समय ठाकुर जी सभी के हृदय मंदिर में उपस्थित होते हैं ।

(६४) जो सत्य सत्य ही भगवद दर्शन की कामना करते हैं उनका कर्तव्य है सभी प्रयत्नों से उन्हीं चारों समय में जप ध्यानादि करना चाहिये ।

(६५) सर्वदा प्रणाम करो – फिर तुम चाहे जैसे भी हो तुममें कितनी ही मलिनता रहे तो भी तुम मुझे पाओगे, पाओगे, पाओगे – मैं तुम्हें दर्शन दूँगा, दूँगा, दूँगा ।

(६६) जो कुकर्मों में रत होते हैं लोकनिन्दा, भय, अपमान यहाँ तक कि संसार में किसी की परवाह नही करते हैं उनका चित्तबल यथेष्ट है, वह चित्त यदि किसी प्रकार भगवान में निविष्ट हो जाय तब अतिशीघ्र श्री भगवान में आसक्त हो जाता है कारण है कि उनमें एकाग्र होने की शक्ति है ।

(६७) जो नाम का अवलम्बन करते हैं वे भगवान के प्रसाद के अतिरिक्त कुछ भी आहार नही करते इसी लिये उनका आहार अपने आप ही सात्त्विक हो जाता है और हर समय नाम करते करते स्त्री

संग करने की इच्छा नही रहती, इसी कारण सात्त्विक आहार एवं ब्रह्मचर्य पालन स्वतः ही हो जाता है ।

(६८) मंत्र ग्रहण के द्वारा गुरुशक्ति लाभ होती है । परम्परागत सिद्धमंत्र साधक को अतिशीघ्र ही अन्तरराज्य में ले जाता है मंत्र ग्रहण का उद्देश्य है गुरु कृपा लाभ । गुरु स्वयं भगवान, मंत्रदान के रूप में वे आत्मदान ही करते हैं उनको हृदय में धारण करके भवसागर से सुख पूर्वक उत्तीर्ण होने के लिए ही गुरु करने का प्रयोजन है ।

(६९) नाम ग्रहण प्रेम लाभ के लिये किया जाता है जैसे सूर्य को कहना नही पड़ता कि आप अन्धकार दूर कर दीजिये सूर्योदय होने के साथ ही अपने आप अंधकार दूर चला जाता है । वैसे ही 'नाम ग्रहण करूँगा' यह अभिलाषा हृदय में जाग्रत होते ही पाप अपने आप चला जाता है इसी कारण पापक्षय करने के लिये नाम ग्रहण नही किया जाता है ।

(७०) पाप तो प्रकट करना अनुताप, तपस्या, अध्ययन, आपदकाल में दानादि के द्वारा

भी दूर होता है। इसीलिये पापों का नाश करने के निमित्त नाम ग्रहण करना अनुचित है। 'तुम (भगवान) मुझ पर प्रसन्न होओगे' भक्त नाम ग्रहण करने के समय यही अभिलाषा रखे। अरे मच्छर को मारने के लिये मत्त मातंग का प्रयोजन नही होता।

(७१) क्या हरिनाम का एक बार कीर्तन करने से छुट्कारा होता है ? किसी प्रकार से भी एक बार नाम कीर्तन करने से फिर नाम ही उसको नही छोड़ता है। उससे अवश भाव से कीर्तन कराता रहता है। वह 'नाम को छोड़ूँगा' यह भी बोले तो भी नाम उसका त्याग नही करता।

(७२) नाम में इतनी शक्ति है जो केवल मात्र मुख से नाम करते करते कुछ समय बाद नाम कायमनोवाक्य में नाम करने की शक्ति और ध्यान प्राप्त करा देता है।

(७३) जितने दिन तक अनुभूति नही मिलती उतने दिन तक श्रद्धा ठीक नही होती है। श्रद्धा न होने पर भी गुरु वाक्य पर विश्वास करके नाम करना चाहिये नाम ही अनुभव दान करता है।

(७४) जितने दिन पुरुष की नारी के प्रति आसक्ति रहेगी उतने दिन उसे बार बार आवागमन करना ही पड़ेगा। मेरे भक्त का कर्तव्य होता है कि उसे स्त्री एवं स्त्री-संगी पुरुषों का भी त्याग कर के निर्जन में जाकर मेरी आराधना करें। जो यह नही कर सकता उसे बारम्बार नारी के द्वारा पदाघात करा के नारी संग का त्याग करवाने के लिये उसको बाध्य करता हूँ।

(७५) सरल उपाय है केवल नाम करना, दोष है 'देह मैं' बोध; जैसे जल में मछली रहती है, पर मछली और जल स्वतंत्र है। गूलर में मच्छर रहता है जैसे गूलर और मच्छर पृथक हैं। देहात्मबोध ही अज्ञान - पाप - दोष जो कुछ समझो सब वह।

(७६) साधना का अर्थ है अपने अपने अधिकार के अनुसार उपाय के द्वारा देहात्मबोध दूर करना। यतियों का प्रणव, द्विजगणों की गायत्री, अधम द्विजों और स्त्रियों, शूद्र प्रभृति का नाम के द्वारा दोष क्षीण होने पर परम ज्योति का प्रकाश होता है।

(७७) जो नाम का अवलम्बन करके अपनी सामर्थ्य के अनुसार रहने की चेष्टा करते हैं कम से कम मन में भावना करते हैं कि मैं निरन्तर भगवान का नाम पकड़कर रखूँगा; उन्हें और कुछ करने की चिन्ता नही रहती है। मैं उन्हें वक्ष से लगा लेता हूँ।

(७८) बात क्या है ? जानते हो ? यदि लकड़ी के ढेर में एक बार आग लगा दी जाय अग्नि लकड़ी को जलाकर भस्मीभूत कर देती है। बार बार आग देने की कोई आवश्यकता नही पड़ती है। वैसे ही यदि कोई एक बार मेरे नाम का उच्चारण करता है तो उसकी जिहवा वैष्णवी हो जाती है। फिर वह नाम उच्चारण किये बिना नही रह पाता; सकृत् नाम का रहस्य यही है।

(७९) यदि एक दियासलाई की तीली से पचासों घास के पूले, पचास मन कपास का ढेर जल जाता है यदि एक छोटी सी तीली से भयानक गिरि गुफा का अंधकार तत्क्षण प्रकाशमय हो जाता है, उसी प्रकार चिदात्मक नाम उच्चारण करने से मनुष्य

मुक्ति लाभ क्यों नही करेगा ? नाम ही तो भगवान है ।

(८०) जो महापापी हो यदि वह नाम करे तो उसके पाप घास के ढेर की तरह धीरे धीरे दग्ध होते रहते हैं। जो सामान्य पापी है उसके पाप कपास की ढेरी की तरह शीघ्र जल जाते हैं जो सत्कर्म करनेवाले सज्जन नाम संकीर्तन करे तो उनकी अंधेरी हृदय गुफा तत्क्षण उज्वलित हो जाती है। एक नाम ही अधिकारी भेद से मृदु, मध्य और अधिमात्र रुप में काम करता है ।

(८१) एक बार नाम का उच्चारण करने से महापापी के पाप के ढेर में आग लग जाती है। जलते रहती है। दो बार दस बार नाम करने से उसमें हवा दी जाती है। अति शीघ्र पाप दग्ध हो जाते हैं। यदि अन्य वार्तालाप की जाय तो उसमें जल के छीटें दिये जाते है थोड़ा सा विलम्ब हो जाता है - इस नाम रुपी बड़वानल को बुझाने की शक्ति किसी में नही ।

(८२) नाम कल्पतरु। नाम के पास जो चाहोगे सो पाओगे - पाओगे ही। एक कामना

करके यदि कोई नाम करे तो उसकी सौ कामनायें पूर्ण होती हैं ।

(८३) ठीक है । तुम्हें अन्धाविश्वास करने नही कहता – तुम एक मास ठीक नियमित भाव से एक एक घंटा सवेरे शाम नाम करके देखो – तब ही तुम नाम की महिमा समझ सकोगे ।

(८४) खाद्याभाव, अर्थाभाव, वस्त्राभाव से दुःखी होकर रो रहे हो ? नाम करो, नाम करो । तुम्हारे बिना चाहे स्तूपाकार खाद्य सामग्री तुम्हारे पास उपस्थित होगी तुम हजार हजार लोगों को भोजन करा सकोगे । तुम्हारे प्रार्थना न करने पर भी ढेरों धन तुम्हारे पैरों पर गिरेगा । वस्त्रों के लिये चिन्ता नही करनी पड़ेगी तुम बहुत लोगों को वस्त्र दान कर सकोगे । तुम त्यागना चाहोगे तो भी उपेक्षित विषय – सम्पत्ति तुम्हारे पीछे पीछे चलेगी । मैं इस बात को बढ़ा चढ़ा कर नही कह रहा हूँ यदि देखना चाहो तो इसका प्रत्यक्ष प्रमाण मैं तुम्हें दिखा सकता हूँ ।

(८५) नामकारी यदि महापापी, असद् संगी, यथेच्छभोजी, स्त्रीपरायण और

यथेच्छाचारी हो बहुत विलम्ब से अनुभूति होती है ।

(८६) और यदि सत् संगी, सात्विक आहार भोजी, शास्त्र पथानुगामी, स्त्री संगत्यागी होवे तो शीघ्र ही अनुभूति होती है ।

(८७) राजसिक, तामसिक द्रव्य आहार असद् संग और स्त्रीसंग मनुष्य के साधन पथ में विन्ध्याचल पर्वत के समान विघ्न ।

(८८) श्रवण में मात्र श्रवण ही होता है और कीर्तन में श्रवण और कीर्तन दोनों होते है इसीलिये कीर्तन को श्रेष्ठ कहते है ।

(८९) मूल श्रवण । पापियों की जिहवा नाम कीर्तन कर नही सकती । श्रवण कर कर के पापों का क्षय होने पर जिहवा में नाम कीर्तन की शक्ति आती है ।

(९०) जो अति महापापी हैं उन लोगों को श्रवण का भी अधिकार नही है । वे लोग भगवद् प्रसंग से दूर ही दूर रहते हैं । यदि किसी प्रकार नाम उनके कान में चला जाय तो नाम अपने बल से उनको आकर्षित कर लेता है ।

(९१) अच्छा, जो लोग कुछ दिन खूब नाम करते हैं फिर नाम छोड़ देते है छोड़ देने से क्या उनका पूर्वकृत समस्त नाम नष्ट हो जाता है ? ना – ना एक भी नाम नष्ट नही होता है। जितने भी नाम मनुष्य सुनता है जितने भी नाम मनुष्य उच्चारण करता है वे सब उसके रक्त, मांस, अस्थि मज्जा में मिश्रण हो जाते हैं शरीर के अणु – परमाणु में नाम मिश्रित होकर रहता है पुनः जब पुण्य कर्म का उदय होता है तो नाम करते करते नाम की पूंजी बढ़ती जाती है।

(९२) नाम की शरण लेने पर भी लोगों का पतन क्यों होता है ? पतन का मूल कारण है दुष्ट प्रारब्ध। प्रारब्ध उस मनुष्य को पतित कर देने से भी नाम उसे पुनः उठा देता है।

(९३) नाम के पास प्रार्थी को अभीप्सित फल प्राप्त होता है। परन्तु जो लोग नामरुपी कल्पतरु के नीचे बैठकर सांसारिक सुख–भोग चाहते हैं वे वंचित होते हैं। कारण नाम उनकी कामनाओं को ही पूर्ण कर देता है। अपना परमानन्द स्वरुप प्रदर्शित नही करता।

(१४) यदि कोई दुष्ट व्यकति लोक में सम्मानित होने के लिये नाम करता है तो नाम उसे सम्मान तो देगा तब उसे उसकी दुष्टता के आधिक्य के हेतु दण्ड भी भोगना पड़ेगा।

(१५) उच्च कीर्तन में कोई दोष नही होता है। उससे उपकार ही होता है किन्तु कोई अश्रद्धालु व्यक्ति को नाम उपदेश करे तो वह तो सुनेगा नही उल्टे नाम की निन्दा करके जिहवा कलुषित एवं उपदेष्टा को भी नाम की निन्दा सुनाकर पाप का भागी करेगा इसी कारण अश्रद्धावान को उपदेश अपराध में गण्य है।

(१६) नाम जोर से चाहे धीरे से जैसे भी भाव से बोलने से सीताराम - नामी के परमाणु आकर्षित होकर नामकारी को पवित्र करते हैं। - उसकी देह शुद्ध होती है।

(१७) नामकीर्तन ही होता है कलियुग का उपाय, अधिकारी विशेष को कीर्तन की अपेक्षा लिखने से काम अधिक होता है असाध्य व्याधि से मुक्त हो जाता है।

(१८) नाम लिखने से शीघ्र बिन्दु दर्शन होता है 'राम' उच्चारण किया है तो मन उसे स्पर्श

न भी कर सके और यदि 'श्री राम, राम, राम' लिखूं उससे वाणी सभी इन्द्रियों का राजा मन, इन्द्रियों गण में श्रेष्ठ चक्षु एवं हाथ सभी काम करते हैं काय मनो वाक्य बिना लिखना संभव नही होता है इसके फल स्वरुप प्रचुर, सात्विक परमाणु आकर्षित होते हैं। वस, इसके द्वारा देह दोष दूर, रोगमुक्ति और नाद ज्योति का लाभ होता है।

(९९) साधु को देखकर लोग प्रणाम करते हैं साधु उसे दृष्टिपात कर ले तो उसके (साधु के) भीतर के सात्विक परमाणु आकर प्रणाम करने वाले को पवित्र करते हैं।

(१००) जो दर्शन करता है उसके पाप क्षय हुये हैं इसीलिये वह प्रणाम करता है प्रणाम के तारतम्य के अनुसार परमाणु संक्रमण होता है।

प्रणाम

(१०१) दण्डवत् प्रणाम करने से साधु उसके सर्वांग देख सकता है। उनकी दृष्टि से

उसका समस्त शरीर पवित्र हो जाता है। घुटने मोड़कर प्रणाम करने से जितना देख सके उतना ही होता है और हाथ उठाके प्रणाम करने से उतना ही थोड़ा पवित्र होता है।

(१०२) पाप तो देहाभिमान, मैं बड़ा हूँ – इस तरह।

(१०३) प्रणाम का अर्थ होता है "न मम"। यह देह मेरा नही है। हे भगवान ! ये आपका देह है। ऐसे आत्म समपर्ण करने से पापक्षय होते है, श्री भगवान की करुणा वरसती है – राम राम सीताराम।

(१०४) भजन द्वारा मनुष्य के शरीर में सात्विक परमाणु अधिक संक्रमण होने से उत्तरोत्तर श्रेयोवृद्धि अर्थात मन अन्तर्मुख होकर अनाहत शब्द के राज्य में प्रवेश करता है एवं सम्यक रूप से उनके संग आलाप करने से, उनके उपदेश से "अहं – मम" एकदम चला जाता है। इसी का नाम मुक्ति है।

(१०५) जाने दो, सभी शास्त्र कहते हैं कि साधु, गुरु के दर्शन, स्पर्शन, प्रणाम, सेवा,

पादोदकपान, प्रसाद भोजन, उनके द्वारा जितना बड़ा भी पातकी होवे वह शांन्ति लाभ करता है ।

(१०६) जहाँ भगवद् भक्त साधु पुरुष निवास करते हैं उस स्थान पर सात्विक परमाणु घनीभूत होकर रहते हैं। उस स्थान पर जो कोई जावे तत्क्षण उनके शरीर में सात्विक परमाणु प्रवेश करते हैं उनके प्राणों में आनन्द का संचार कर देगा।

(१०७) इस मार्ग पर चलने के लिये यथेच्छ भोजन, अतिरिक्त स्त्री संसर्ग और कुसंग इत्यादि त्याग करना कर्तव्य है। यदि त्याग नही कर सको तुम्हारा केन्द्र में पहुँचने में विलम्ब होगा दुःख भोग करोगे ।

कदाहार

(१०८) मछली मृतदेह, विष्ठा, श्लेष्मा भोजन करती है उन्ही परमाणुओं से उसका शरीर पुष्ट होता है। मछली घृणित परमाणुओं की समष्टि है। इसीलिये मछली खाने से देह और मन दोनों दुष्ट

हो जाते हैं। इस कारण जो लोग निरोग, स्वस्थ शरीर एवं स्थिर शान्त मन चाहते हैं, उन्हें मछली त्याग करना अवश्य कर्तव्य है।

(१०९) बकरा कामी पशु। बकरे का मांस भोजन करना एवं बकरी का शुक्र भोजन करना एक ही बात है।

(११०) जो लोग बकरे का मांस खाते है उनकी बकरे की तरह काम प्रवृत्ति बढ़ती है। वे ब्रह्मचर्य की रक्षा करने में समर्थ नही होते हैं। अजस्र स्त्री संग करके देह और मन को जीर्ण कर डालते हैं।

(१११) शुक्र ब्रह्म, शुक्र आत्मा, वह यदि शरीर से चला जाय तो मनुष्य कितने दिन जीवित रह सकेगा ?

(११२) धान, जौ, चना के प्राणों के द्वारा जीवों की देह रक्षित होगी इसीलिये ब्रह्माजी ने सृष्टि की है। किन्तु बकरे आदि पशु मनुष्य के भक्षण के लिये नही उत्पन्न किये गये।

(११३) जिस पशु का जैसा स्वभाव होता है उसका मांस भक्षण करने वाला भी वैसे ही स्वभाव को प्राप्त करता है।

सहधर्मिणी

(११४) भारतीय नारी कामसंगिनी नही सहधर्मिणी है । भारत के पुरुष कामोपभोग के लिये स्त्री ग्रहण नही करते । नियमित शास्त्र सम्मत भोग के द्वारा काम पर विजय करने के लिये स्त्री परिग्रह करके उसे संगिनी करके वे परमानन्द के सागर की ओर यात्रा करते हैं ।

(११५) माताओं को स्कूल कालेज में पढ़ाकर वकील वैरिस्टर क्लर्क करने का तो भारत का धर्म नही है । भारतीय नारी तो नन्दनवन की पारिजात, स्वर्ग की देवी विश्व जननी , वो यदि कुर्ता जूता पहिनकर नौकरी करने चलेगी तो फिर संसार की अवस्था कैसी होगी ?

(११६) नौकरी करने के लिये उनकी देह तैयार नही हुई है । वे कोमलांगी हैं, उनकी मनोवृत्ति कोमल; वे पति-रुपी नारायण की सेवा करेगी ।

(११७) संसार का सारा भार स्त्रियाँ ही उठायेगी, पति तो उपार्जन करके ही निश्चिन्त हो जाते हैं । सारे दिन पुरुषों के साथ कंधा

पल्ला भिड़ा के नौकरी करने जैसा शरीर भगवान ने उनका बनाया नहीं ।

(११८) जब तक देहात्मबोध रहेगा तब तक मन बाह्य विषयों में भटकेगा ही, स्त्री - पुरुष को सावधान रहना उचित है। निकट रहना, मुँह की और ताककर वार्ता करना नहीं हास्य परिहास नहीं; वैसा होने पर परमाणु संक्रमण अवश्य होगा ।

(११९) अरे ! जन्मने से पूर्व जो माता के स्तनों में दुग्ध का संचार करते हैं उन्होंने आहार की व्यवस्था कर रक्खी हैं। भोजन की ओर न ताक के जो उनकी ओर देखते हैं, जो पिता पुत्र को लक्ष्य (भगवान) की ओर प्रेरित करते है वे ही तो यथार्थ पिता है ।

(१२०) आहार पर ही सब निर्भर करता है। मनुष्य के लिये दिन में एक बार, रात को एक बार भोजन करना ही दैवं निर्मित है । इसके द्वारा मनुष्य उपवास का फल प्राप्त करता है। शीघ्र मन स्थिर हो जाता है ।

ब्राह्मण-जीवन-लक्ष्य

(१२१) ब्राह्मण के जीवन का लक्ष्य स्वतंत्र। और शूद्रादि वर्ण के जीवन का उद्देश्य स्वतंत्र है। ब्राह्मण सत्व गुण प्रधान है और सत्व गुण वर्धन करने के लिये सतत सचेष्ट रहता है। शूद्रादि वर्ण के लोगों के साथ बैठ कर भोजन करने से उनका तमोगुण बढ़ता है। भोजन काल में सबसे अधिक परमाणु संक्रमण होता है। भुक्त अन्नादि के साथ उनके परमाणु ब्राह्मण के शरीर में प्रवेश करके उसको अवसन्न कर देते हैं। केवल ब्राह्मण की ही क्षति नही होती, ब्राह्मण के साथ एक पंक्ति में बैठकर भोजन करनेवाले क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र की भी क्षति होती है।

(१२२) जब तक मनुष्य तपस्या परायण होकर शास्त्रों का अध्ययन, श्रवण और मनन नही करता तब तक शास्त्र अपना प्रकृत स्वरुप प्रकट नही करते।

(१२३) तपस्विगण ही शास्त्रों को अति प्रियतम होते हैं। उन लोगों को सब रहस्य शास्त्र ही समझा देते हैं।

(१२४) शास्त्र और भगवान स्वतंत्र नही हैं। तप युक्त होकर अनन्य भाव से शास्त्रों की शरण लेने से तब मनुष्य शास्त्रार्थ हृदयंगम करने में समर्थ होता है। नही तो हल्के उथले शास्त्र ज्ञान से शांति लाभ करने में समर्थ नही होता है।

(१२५) संयम ही देश का प्राण है। इस साधना के द्वारा नर-नारी अमर होते हैं। संयमी सज्जन अन्त में आनन्द पूर्वक रहकर देवयान को पाते हैं।

नीच व्यक्ति का लक्षण

(१२६) नीच व्यक्ति का लक्षण है परदोष का प्रचार करना, उसके द्वारा 'मैं अच्छा आदमी हूँ' लोगों के सामने स्वयं यह दिखा कर उनकी श्रद्धा अर्जित करना चाहता है किन्तु पर निन्दा ऐसी भयानक है कि केवल निन्दक ही नही सुनने वाला भी पाप का भागी होता है।

(१२७) पर निन्दा के समान स्वयं को क्षति पहुँचाने वाला अपराध दूसरा नही है।

(१२८) संसार में जितना ऐश्वर्य है समय (काल)

से वह नाश को प्राप्त हो जाता है उत्थान होने पर पतन अवश्यम्भावी है, संयोग अंत में वियोग में परिणत होता है एवं जीव का जीवन भी अंत में नाश को प्राप्त होता है ।

विक्षेप

(१२९) साधन काल में जो समस्त विक्षेप आकर उपस्थित होते हैं उन्हें मन ही मन 'सब तुमही हो'-एकरुप बहुधा । एवं अन्य समय नर-नारी, पशु-पक्षी, कीट-पतंग सभी को 'तुम ही हो' ऐसी चिन्ता करके प्रणाम करना, सभी का सम्मान करना, यह होता है अन्यरुप बहुधा ।

(१३०) पढ़कर सुनकर कुछ नही होगा । साधना करना चाहिए । साधना के बिना शान्ति पाना किसी युग में सम्भव नही ।

(१३१) मानव मात्र का जीवन पूर्व जन्म के कर्मो द्वारा नियंत्रित है ।

जन्म - मरण

(१३२) जन्म के साथ मृत्यु भी कैसे होगी यह भी निश्चित रहता है। अपमृत्यु होने से भी महापुरुषों के आश्रित भक्त उच्च गति लाभ प्राप्त करता है।

(१३३) पापक्षय होते ही मनुष्य के रंग में परिवर्तन होता है शरीर उज्ज्वल होता है। देह से ज्योति निकलती है। ओज धातु शरीर में संचित होने से ही ज्योति का आविर्भाव होता है।

(१३४) रात्रि के चार बजे से प्रातः आठ बजे तक साधना का प्रथम काल है। साधना का द्वितीय समय है सूर्यास्त के आधा घंटा पहले से सूर्यास्त के दो घंटा पश्चात् तक का मध्यान्ह में यथासाध्य जप करना चाहिये।

(१३५) जो लोग साधु हैं उनको नित्य लाख जप करना चाहिये एवं गृहस्थों को पचीस हजार नाम जप अवश्य करना चाहिये।

(१३६) ठाकुर जो भी करते हैं मंगल के लिये, यह हमारे ठाकुर जी की वाणी है। मेरे

दीर्घ जीवन में यह बात पद पद पर सत्य होते देखा है इसीलिये इस बात की उच्च कंठ से घोषणा करने में यह कठं कभी कुंठित नही होगा ।

स्वप्न का राज्य

(१३७) देखो माँ, यह संसार एक स्वप्न का राज्य है। यह जो कुछ देखती हो सब मिथ्या है। इस संसार का हंसी–रुदन, सुख–दुःख, ज्वाला–यंत्रणा सब स्वप्न की भाँति मिथ्या है। मिथ्या को सत्य समझ कर हम कितना रोते हैं हाय हाय करते है कितनी चीत्कार मचाते हैं। परन्तु यह एक स्वप्न के सिवा कुछ नहीं।

(१३८) जो भगवान के चरणों का आश्रय लेते हैं उन्ही का यह स्वप्न भंग हो जाता है वे जाग उठते हैं। निद्रा में डूबे लोगों के मुँह की भाव भंगिमाओं को, रुदन आदि को देख कर उन्हें हँसी आती है। और वे पुकार कर कहते हैं – अरे रोओ मत तुम स्वप्न देख रहे हो, उठो, जागो ।

(१३९) श्री भगवान को पुकारो, क्या करने आया और क्या कर रहा है ? संसार में श्री भगवान को पुकारने के लिये आकर यहाँ सम्बन्धों को जोड़कर हाहाकार कर रहे हो ? तुम्हें तो जाना पड़ेगा, उसके लिये क्या उपाय किया है ? यही बात समझाने के लिये वह गला फाड़कर चिल्लाता है ।

(१४०) देखो भाई, ज्वाला के समान वस्तु जगत में कुछ है ही नही, यहाँ से (संसार) से । जितना ज्वाला आती है उतना ही मनुष्य भगवान को पकड़ता है ।

(१४१) संसार की ज्वाला मनुष्य को नया मार्ग पकड़के देती है । जो कोई भी लोग भगवत्पथ पर गये हैं अधिकांशतः संसार की ज्वाला पाये हुये हैं ।

(१४२) केवल पुकारो, तुम्हारे लिये क्या अच्छा है क्या बुरा, यह वे तुमसे ज्यादा अच्छी तरह से समझते हैं ठीक ही व्यवस्था होगी, होगी ही, तो फिर चिन्ता क्यों ।

(१४३) तुम्हारा एक जन है, वह सर्वदा तुम्हारी रक्षा कर रहा है । वह तुमको अपनी गोद की ओर खीच रहा है । यह बात मत भूलो,

जो भी काम करते हो - उनका काम बोलकर करते रहो। वे ही समझेंगे।

(१४४) यह निश्चित जानो कि भगवान जो भी करते हैं मंगल के लिये ही है।

(१४५) इस संसार का अस्तित्व कल रहेगा या नहीं, निश्चित नहीं है। इसके लिये हँसना-रोना, दुःख-सुख, मान-अपमान, इतना सोचने के लिये समय कहाँ ? पुकारो, जैसे कैसे पुकारो, सब व्यवस्था हो जायेगी।

काम रिपु

(१४६) जगत में जितनी भी कठिनाइयाँ हैं उनमें से कामरिपु को जीतना सब से कठिन है। जय करना खूब कठिन-कठिन होने पर भी जीता जा सकता है।

(१४७) प्रथमतः स्वयं संयमी होने के लिये स्त्री को भी संयम की शिक्षा देनी चाहिये, उसे भी पूजा-पाठ, जप-ध्यान, में अपनी संगिनी करना चाहिये, नही तो उसके आकर्षण से स्वयं को स्थिर रखना कठिन हो जाता है।

(१४८) किसी पर्व (दिवस) पर स्वयं को संयत रखने के लिये पृथक शय्या की व्यवस्था करनी चाहिये नही तो अपनी रक्षा करना कठिन है ।

(१४९) पत्नी केवल कामक्रीड़ा की संगिनी नही, उसे सत्पथ पर ले चलना पति का कर्तव्य है । जो स्त्री सत्पथ पर चलना नहीं चाहे तो उसके लिये स्वतंत्र व्यवस्था करनी चाहिये ।

(१५०) एक मात्र जिहवा को जीतने से ही सभी इन्द्रियों को जीता जा सकता है। रोग होने पर औषध ग्रहण करने की भाँति क्षुधा लगने पर अन्न ग्रहण । जो भगवान को पाना चाहते है उन्हें इसी प्रकार आहार लेना कर्तव्य ।

(१५१) तत्त्व सम्बन्धी ज्ञान मात्र श्रवण, मननादि द्वारा नहीं होता । जब तक तत्त्व साक्षात्कार नहीं होता तब तक वह ज्ञान केवल मुखस्थ मात्र रहता है ।

(१५२) संसार स्वप्नवत्, स्त्री, पुत्र, आत्मीय – स्वजन, यहाँ तक कि स्वयं की देह भी अभी नही, कब किसका बुलावा आ जावेगा कोई ठीक नही, आहार, निद्रा,

भय, मैथुन तो मनुष्य भी करता है और पशु भी – मनुष्य और पशु में भेद है धर्म का ।

(१५३) बहुत से जन्म जन्मान्तरों की साधना के फल स्वरुप मनुष्य नर देह को प्राप्त करता है । बड़ी दुर्लभ है मानव देह । इसलिये मनुष्य मात्र का भगवान के प्राप्त होने की चेष्टा करना कर्तव्य ।

स्थूल, सूक्ष्म, कारण देह

(१५४) स्थूल, सूक्ष्म और कारण – देहत्रय, घर, मकान, स्त्री, पुत्र सब स्थूल देह के हैं । स्थूल देह में, मैं का नाम अविद्या । जब तक अविद्या का पाश छिन्न नही होता है तब तक मनुष्य ठीक – ठीक अनुभूति नही पाता है ।

(१५५) स्थूल, सूक्ष्म और कारण देह से अतीत आत्मा ही मनुष्य का प्रकृत स्वरुप है । जब तक मनुष्य को आत्मा का ज्ञान नही होता – 'मैं देह नहीं' बात यह ठीक से समझ में नही जान पाता है उतने दिन तक ज्वाला और आवागमन नही छूटता है ।

(१५६) भगवान श्री गुरुदेव मंत्र रुपी भगवान को कान के द्वारा भीतर देते हैं और बाहर माला, तिलकादि, वेशभूषा से भूषित करते हैं ।

माला तिलक

(१५७) माला, तिलकादि दासत्व के चिन्ह हैं । तिलक देखकर लोग समझ जाते हैं कि यह भगवान का दास है, - साधन पथ का यात्री ।

(१५८) जितना 'मैं-मैं मेरा-मेरा', जितनी वेशभूषा का आधिक्य उतना ही दुःख, ज्वाला, यंत्रणा ।

(१५९) जैसे दिन के बाद रात आती है वैसे ही मनुष्य के जीवन में अभाव और वैभव क्रमशः आते जाते हैं अभाव आते ही समझ लेना चाहिये कि वैभव के दिन आने वाले हैं, अभाव वैभव के आवाहन गीत गाता है, सम्पदा आने से समझ लो कि अभाव आने में देरी नही, इसमें मन को न देकर जैसे श्री भगवान को पाया जाय वैसी चेष्टा करना ही प्रकृत पुरुषार्थ है ।

(१६०) तरंगे समुद्र से भिन्न कुछ और नही हैं, वैसे ही जगत रुप श्री भगवान के वक्ष में नर-नारी, पशु-पक्षी, कीट-पतंग आदि अनेक रुपों में दीखने पर भी श्री भगवान से भिन्न और कुछ नही है ।

आत्म दर्शन

(१६१) आत्म दर्शन कैसे होगा ? गुरु कृपा करके मंत्र देते हैं, उसी मंत्र का जप करते करते नाद ज्योति रुप से आत्मा अन्तर में प्रकाशित होती है । तब क्रमशः 'मैं देह' यह बोध दूर हो जाता है । जीव आनन्द में निमज्जित होता है । संसार से मुक्ति लाभ करते ।

(१६२) मंत्र, हठ, लय समस्त योगों का मूल लक्ष्य है मनोनाश - मन ही संसार की रचना करता है ।

(१६३) अति हवा में रहना क्षतिकर है। प्राण ठीक से कार्य नही कर सके - मन हवा के कारण अन्तर्मुख नही हो सकता - देह में ही खेल करता रहता है। (समुद्र तीर वर्ती

स्थानों में एवं पर्वतों के ऊपरी भाग में प्रबल वायु प्रवाह से ध्यान में विघ्न की सृष्टि होती है ।

(१६४) अग्रसर होने के लिये नित्य ध्यान एवं निर्जन-तपस्या सभी का कर्तव्य है। इसके द्वारा जगत्कल्याण विशेष भाव से निष्पन्न होता है । बिना निर्जन के मनुष्य तैयार नही होता ।

(१६५) शास्त्र ने बोला है - प्रारब्ध अर्थात् जिन कर्मो से यह देह बनी है उनका भोग करना ही पड़ेगा, नूतन कर्म होगा नही, यदि उनका जन्मान्तर की अधिक दुष्कृति न हो ।

(१६६) जो लोग ज्वाला - यंत्रणा से श्री भगवान का आश्रय लेते है तो वह उनकी कृपा, और जो लोग कर्मवश नही लेते है, डाक्टर वैद्यों के ही चक्कर में पड़ा रहे तो वह अकृपा ।

(१६७) जप का उद्देश्य मन को स्थिर करना । देह यदि घूमते रहे तो मन स्थिर कैसे होगा ? घूमते फिरते जप करने से मन स्थिर होता है। जैसे बैठे (आसन पर) तब आनन्द लाभ होता है ।

(१६८) मत भूलो - गुरु - ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर। मनुष्य देह धारण करके आते हैं केवल कृपा करने के लिये।

(१६९) साधन राज्य में कहो या जो भी कहो, जो जनसंग को साँप की तरह, मिष्टान्न को विष की भाँति, और स्त्रियों को राक्षसियों की भाँति जो देख पाता है वही विद्या - 'मैं देह नही, आत्मा हूँ,' यह ज्ञान लाभ करने में समर्थ होता है।

(१७०) कोई बुलाये या न बुलाये, बुला बुला कर नाम देकर तुम लोग धन्य हो जाओ उन लोगों को धन्य कर दो। दिल्ली का वातावरण पवित्र हो।

(१७१) श्री भगवान ही सारे वेशों में सज कर लीला कर रहा है। आनन्द, केवल आनन्द - शुद्ध आहार एवं नाम कीर्तन से, गायत्री जप से - मनुष्य लाभ करता है।

(१७२) संसार का त्याग नही करना पड़ता, सब कुछ रहता है एवं असीम आनन्द का भोग करते हैं जो लोग भगवान का आश्रय करते हैं।

(१७३) अधिकारी विशेष दस श्रुतियों, एक सौ आठ श्रुतियों, विष्णु पुराण, भक्त चरित्र का स्वाध्याय कर सकता है। मन नूतन नूतन चाहता है इसीलिये इतने ग्रंथों के नाम कहे हैं।

मन स्थिर के उपाय

(१७४) मन स्थिर करने के उपाय हैं - आहार शुद्धि, शुद्ध भाव में रहना, उठते-बैठते, खाते-सोते नाम करना। प्रथम वाचिक जप उसके बाद उपांशु जप - मात्र अपने कानों में सुनायी पड़े; मानस जप-मन ही मन उच्चारण; प्रकृत जप का अधिकार मिलने पर कितने दिनों में मन स्थिर होगा इसका कोई हिसाब नही है।

(१७५) कुण्डलिनी जब वाम नासा में निश्वास रहता है, उस समय वह निद्रित रहती है। दक्षिण नासा में श्वास प्रवहण काल में नित्य जागृत होती है। विशेष जागरण जप - ध्यान द्वारा होता है।

(१७६) तुच्छ चिन्ताओं का त्याग करके केवल उठते, बैठते, खाते, सोते, 'गुरु-गुरु' बोलो, 'मैं शरणागत'-बोलते रहो, तत्पश्चात किस प्रकार से क्या होगा-जान नही सकेगा।

(१७७) स्वप्न राज्य में, ताश के रंगमंच पर सुख दुःख, मान अपमान, शान्ति - अशान्ति, अभाव - वैभव सब अभिनेता अभिनय करने के लिये सज्जित हुये हैं। एक के बाद और एक ऐसे आकर कर्मों का क्षय कर देता है।

(१७८) ये नाम पाठ मौनादि साधना के अन्तगर्त हैं। यदि कोई प्रार्थना नाम पाठ मात्र करे तो वह उसके द्वारा ही कृतार्थ हो जायेगा। पुस्तकें खोलकर स्वाध्याय नही करना होगा। थोड़ा धीरे से भगवान सुन रहे हैं ऐसी मन में करके पाठादि करने से प्राण भर जाते हैं।

(१७९) प्रदीप की शिखा कभी दाहिने या वाँये नही उठती सीधी उर्ध्व की ओर उठती है। उसे ढक्कन देकर दबा कर रखने से वह ढक्कन को काला कर देती है। वैसे ही आत्म शिखा सतत उर्ध्व गामी। पूर्व कर्म ढक्कन लगा कर उनको इस शरीर को नाना पापों से मलिन कर देते हैं।

(१८०) यह एक सत्य बात है कि मनुष्य स्वाधीन नही, उसके जन्म जन्मान्तरों के पूर्व कर्म ही उसको चालित करते हैं।

शान्त दास्यादिभाव

(१८१) ये जो शान्त दास्यादि का भाव – इनका आकर्षण अर्थात् भक्त का प्रभु से, भृत्य जैसे स्वामी से प्रेम करते हैं, स्नेहमयी जननी जैसे पुत्र से प्रेम करती है, पति परायणा नारी जैसा प्रेम करती है पति से, जैसा आकर्षण प्रभु से, सन्तान से स्वामी से वैसा ही आकर्षण । कारण वही भावातीत अवस्था में देह, इन्द्रिय आदि नही है, है केवल अपरिसीम प्रेम एवं अनन्त प्रेम ।

(१८२) ब्राह्मण का कर्तव्य है नित्य त्रिसंध्या, पुत्र का कर्तव्य है – जगत्पिता, जगन्माता के बोध से पितृ मातृ सेवा, नारी का कर्तव्य है – नारायण बोध से स्वामी सेवा । सभी का कर्तव्य है – अभक्ष्य त्याग, भगवान को निवेदन करके अन्न जल ग्रहण और केवल नाम ।

(१८३) उठते, बैठते, खाते, सोते नाम; नाम करते करते समझ में आयेगा – मछली जैसे पानी में रहती है, वैसे ही सभी भगवान में ही डूबे हुये हैं । नाम, नाम, नाम ।

(१८४) हरि नाम करते करते नृत्य करने से देह कृत पाप नष्ट होते हैं जैसे ही पाप नष्ट होते हैं। तत्क्षण ही नाद या ज्योति आविर्भूत होती है। निर्जन में गंभीर गिरि गुहा में जाना नही पड़ा, अनेक भक्त बाबा व माइया लोगों ने नाम करते करते नाद और ज्योति लाभ किया है।

(१८५) अपार्थिव प्रेम को समझने के लिये पार्थिव प्रेम से ही समझ में आता है। विषय सुख है इसीलिये मनुष्य परम सुख - परमानन्द की धारणा कर सकता है।

(१८६) विषय - सुख न रहता तो मनुष्य परमसुख को जान ही नही पाता - कल्पना भी नही कर पाता। विषय सुख ला देता है परम की प्रेम वार्ता।

(१८७) गुरु गुरु जप करते करते श्री भगवान के अपनेजन (दूतों) - अश्रु, पुलक, रोमाञ्च इत्यादि सात्विक भाव प्रकाशित होते हैं। इसके बाद नाद ज्योति रुप में श्रीभगवान आविर्भूत होते हैं।

(१८८) भारत के नर नारियों के जीवन का लक्ष्य है श्री भगवान को लाभ करना, - सर्वहारा जाति का अनुकरण

करके आज भारत के शिक्षित फुल पैन्ट परिधानकारी बाबा लोग यह समझ नहीं सकते, मल-मूत्र से दूषित फुल पैन्ट उन्हें अधःपतन की दिशा में आगे ले जा रहा है ।

(१८९) जब तक प्रेम में कामना है तब तक वह प्रेम जागतिक (सांसारिक) है - वह प्रेम दुःखप्रद, जब प्रेम कामनाशून्य हो जाता है तब उस समय ही से प्रकृत प्रेम है । - वही प्रेम ला देता है चिरवांछित को ।

(१९०) सभी अधिकारीगणों पर कृपा करने के लिये नाम प्रचार रुप -

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ॥

इसी तारक ब्रह्म नाम का खोल करताल सहित कीर्तन - नृत्य, बस, इसी से नाद (अनाहत) का आविर्भाव ।

(१९१) शास्त्र ने बोला है कि व्यक्त और अव्यक्त भेद से कोटि सहस्र प्रकार के

नाद हैं और कोटि शत प्रकार की ज्योति, भीतर खेल करती है नाद का एक बार जागृत होने से तो वह नाद परम नाद में डुबो देगा ही।

(१९२) जब गुरुदत्त मंत्र जप करते करते नाद ज्योति का आविर्भाव होता है तब शिष्य ठीक समझ पाता है कि मैं देह नहीं हूँ तब जन्मान्तर आविभूर्त होता है इस देह की ममता दूर हो जाती है।

(१९३) प्रत्येक मनुष्य के शरीर में जो लोमकूप हैं उन्ही लोमकूपों से शरीर के दूषित पदार्थ निर्गत होते रहते हैं फुलपैन्ट एवं जामा पहिन रखने से वे दूषित पदार्थ शरीर में ही बैठ जाते, शरीर को तमोग्रस्त करते हैं।

सुषुम्ना पथ

(१९४) भगवत्पथ की पथ प्रदर्शिका महाशक्ति कुण्डलिनी का सहस्रार में जाने का जो सूक्ष्म सुषुम्ना मार्ग है उसी मार्ग का अवलम्बन करके मनुष्य अटूट स्वास्थ्य, परमशान्ति, भगवद् भक्ति, प्रेम लाभ कर

सकता है। वो पथ के रुद्ध हो जाने से मनुष्य बद्ध जीव, रोग, शोक, दुःख, यंत्रणा, काम, क्रोधादि का खिलौना बनकर पशुवत् जीवन यापन करता है।

(१९५) ज्योति, नाद, बिन्दु, कल्पना नही हैं। सुस्पष्ट देखा जाता हैं वर्षो पर वर्षो तक सुना जाता है।

(१९६) कोटि सहस्र व्यक्त - अव्यक्त नाद हैं। ये नाद बिन्दु ही प्रत्यक्ष दर्शन कराके श्री भगवान में मनुष्य को स्थिर कर देते हैं - वह परमानन्द में डूब जाता है।

(१९७) एक जन विश्व नियन्ता है जिनके नियंत्रण में चन्द्र, सूर्य, ग्रह, तारे, समग्र विश्व अणु परमाणु नियंत्रित होके अपने अपने कार्यों में निरत रहते है।

(१९८) साधु लोगों को अच्छी वस्तुओं का व्यवहार करना जैसे वमन करके पुनः खाना।

(१९९) शास्त्र पढ़ने से, बड़ी बड़ी उपाधियाँ रहने पर, सोने के मेडल गले में झुलाने पर भी जो लोग क्रियावान नही हैं वे लोग मूर्ख हैं - यह बात शास्त्र ने बोला है।

शास्त्राण्यधीत्यापि भवन्ति मूर्खाः ।
यस्तु क्रियावान पुरुषः स विद्धान् ॥
सुचिन्तितं चौषधामातुराणां ।
न नाममात्रोण करोत्यरोगम् ॥

(२००) यह नाम कीर्तन में अनुराग होना बड़ी सहज बात नही है बहु जन्म जन्मान्तरों के पुण्यों के न रहने से मनुष्य की हरि नाम कीर्तन में इच्छा नहीं होती ।

(२०१) सर्वदा (हरि) स्मरण करना ही होता है जीवन का कर्तव्य, मनुष्य आता है श्री भगवान के दर्शन करने के लिये । क्रमशः जाने का समय निकट आ रहा है - केवल तुम्हारा नहीं; प्रत्येक नर नारी के जन्म लेने के बाद ही मरण शुरु हो जाता है। पल पल मनुष्य मृत्यु की ओर चलता जा रहा है ।

(२०२) कब किस मुहूर्त में जाना पड़ेगा उसका ठीक नहीं, इसीलिये सभी को चेष्टा करनी उचित है जिससे समय वृथा न जाय, कलियुग में सहज पथ नाम लीला और चिन्तन - नाम करो ।

(२०३) काल के प्रभाव से शिक्षित मनुष्यों के मध्य से प्रायः शुद्धाहार, उपासना चली गई है उसके कारण कितने प्रकार के

अस्पताल हुये हैं और हो रहे हैं। जाने दो, वे ही सब करेंगे - करके रखा है, यह स्थिर निश्चय करके नाम करते करते अग्रसर होओ। देखना, अपने आप सब हो जाता है। वे जिन लोगों की दीक्षा हुई है बीच बीच में गुरु संग किया करें। श्री श्री गुरुदेव के उपदेशों को मान कर चलने की चेष्टा करें।

(२०४) ज्योति नाद प्रभृति भगवत्प्रापक सकल अनुभूतियाँ वृथा कल्पना नहीं है एम. ए. पास करने में अपने को वर्षों का समय लगता है इससे वे अर्थोपार्जन की योग्यता लाभ करते हैं - इस परमार्थ लाभ के लिये प्रकृत मोक्षार्थी यथाशास्त्र प्रायश्चित्त करके श्रीगुरुनिर्दिष्ट पथ में तीन मास तपस्या करने से अवश्य ही सत्य का अनुभव करके कृतार्थ होगा ही।

(२०५) जिस किसी के हाथ का भोजन करने में कितने दोष हैं यह यदि कोई ठीक ठीक समझ ले तो उसके लिये नियम मानकर चलना खूब सहज होता है विष खाने से

मनुष्य मात्र मरता है अशुद्ध आहार ज्ञान ही नष्ट करता है ।

(२०६) सब भगवान – जिसका अपमान करोगे वो भगवान का अपमान करना होता है । जिसका दोष दर्शन करेगा, भगवान का ही दोष दर्शन करना होगा ।

दोष दर्शन

(२०७) जितने दिन भीतर के दोष रहेगा उतने दिन तक दूसरों के दोष देख पाता है जो दिन मनुष्य दूसरों के दोष न देख पाये उस दिन समझेगा, वह भगवान के द्वारा गृहीत हुआ है – उनका और दोष नही है, इस कारण हम लोगों की वस्तु है सभी को मन ही मन प्रणाम करना ।

(२०८) संसार छोड़ना नहीं होगा – वन में जाना नहीं होगा – जैसे भाव में है उसी भाव में रहके साधन राज्य आनन्द राज्य की ओर अग्रसर हो सकते हो, ज्वाला तो 'मैं और मेरा' लेकर ही है ।

(२०९) जिसे 'मैं' बोलते है वह श्री श्री गुरुदेव का शरीर है। वे ही 'मैं' के रुप में सजकर

लीला कर रहै हैं। यह शरीर उन्ही का लीला विग्रह है। इसके लिये कष्टकर साधना नही करनी पड़ेगी। जो मत्रं पाया है उसी को दृढ़ता पूर्वक पकड़े रखने की चेष्टा, - वस, उसी से ही हो जायेगा।

(२१०) तुम लोग इनकी लिखी हुई पुस्तकें सब एक बार पढ़ना, इससे बहुत कुछ जान और समझ सकोगे। मनोयोग देकर पढ़ना चाहिये, नेत्रों मे जल न आने से भी चलेगा, किन्तु रोमाञ्च चाहिये ही, नही तो जो कुछ पढ़ लिया होगा सब बह जायेगा।

(२११) एक बट का बीज कितना सूक्ष्म, किन्तु उसके अंदर में कितना विशाल वृक्ष छिपा है - बाहर से देखकर समझा नही जा सकता, वैसे ही एक मात्र ओंकार से यह समस्त जगत की उत्पत्ति।

(२१२) प्रत्येक मनुष्य के अंदर में वही ओंकार ही समस्त कर्म राशि करवाता है। अपनी अपनी कर्म राशि के अनुसार काम कर रहा है।

(२१३) सब बँधे हुये हैं किसी को कुछ भी करने को नही, यह करूँगा - यह नही करूँगा,

यह करने से अच्छा होता – सब मन की भूल है वास्तव में जो होनेवाला है वह पहले से हुआ है ।

(२१४) जितने दिनों तक पुरुष का स्त्री के प्रति अनुराग रहेगा उतने दिन इधर का दरवाजा बन्द रहेगा जैसे आँख से आँख मिलेगी तब आलिंगन करना होगा ही ।

(२१५) गंगा के ज्वार भाटे के समान साधन – राज्य में ज्वार भाटा है । कोई चिन्ता नहीं । कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत हुई है अवश्यमेव अवश भाव से खीचंकर ले जायेगी ।

पितृ मातृ सेवी

(२१६) पितृ मातृ सेवी असाध्य साधन कर सकता है । उसे भगवद् लाभ के लिये स्वतंत्र साधना करने की आवश्यकता नहीं होती है । श्री भगवान बिना चाहे ही आके दर्शन दान करते हैं ।

(२१७) जो पुत्र माता पिता की सेवा नहीं करता, पिता माता के प्रति दुर्व्यवहार करता है, कटु वाक्य बोलता है, भरण–पोषण करता

नही, वह हतभाग्य पुत्र यदि बहुत धर्म कर्म का अनुष्ठान करे उसके समस्त निष्फल, पितृ-मातृ-द्रोही पुत्र को अनन्तकाल तक नरक यंत्रणा भोगनी पड़ती है ।

(२१८) पितृद्रोही हतभाग्य पुत्र के नरक गमन का पथ रुद्ध करने का कोई उपाय शास्त्रों ने निर्देश नही किया है वह जितने दिन जीवित रहता है तब तक नरक यंत्रणा भोगता है देहान्त के बाद अनन्त काल तक नरक में वास करता है ।

(२१९) ब्रह्म, स्व-गत, स्व-जातीय, विजातीय इन तीनों प्रकार से भेद शून्य है । अविराम हरि हरि करने से इन त्रिविध भेद-शून्य ब्रह्म ज्ञान का लाभ करने मे कलि का जीव समर्थ होगा ।

(२२०) 'मैं आपका शरणागत' इस महामंत्र को मन में रखना; प्रकाश, आनन्द और सुर (नाद) के देश में पहुँच जाओगे, अरे अरे हृदय के अदंर में आनन्द का समुद्र है । दो, दो नाम करके डुबकी दो । शान्ति साम्राज्य निकट में है ।

भगवत्सेवा अतिथि सेवा - संसार कर्ताह

(२२१) भगवत्सेवा, अतिथि सेवा प्रभृति गृहस्थी के प्रधान कर्तव्य हैं ।

(२२२) 'संसार के कर्ता श्री भगवान' हम लोग उनके दास दासी हैं जो कुछ करते हैं सब उनकी प्रीति के लिये, ऐसा कोई कर्मानुष्ठान नही करेंगे जिससे भगवान प्रसन्न न हों - इस भाव से श्री भगवान की प्रीति के लिये जो कर्मानुष्ठान कर सके वे लोग ही सहज भूमा सुख लाभ में समर्थ हो जाते हैं ।

(२२३) नारियों का कर्तव्य - स्वामी - सेवा, पति नारायण व्रत - सतीत्व, पातिव्रत्य, मेरे स्वामी नारायण, इस भाव से जो नारी स्वामी - सेवा करती है वह सहज ही परमानन्द लाभ करने में समर्थ होती है ।

(२२४) सती नारी की अपूर्व महिमा का वर्णन करना मनुष्य के लिये असाध्य है । सती नारी मानवी नही देवी है । उनके लिये कोई कार्य असाध्य नही है । वे मत्युलोक

में अवस्थान करके भी वैकुण्ठ का सुख भोग प्राप्त करती है ।

(२२५) सती नारी की चरण धूलि ससागरा धरित्री को पवित्र करती है । जिस देश में सती नारी अवस्थान करती है वह देश मर्त्यलोक नही वैकुण्ठ ।

(२२६) मन के द्वारा प्राण को स्थिर करना ज्ञान, और प्राण के द्वारा मन को स्थिर करना योग है ।

(२२७) 'नाम' – एक एक शब्द ज्योतिर्मय, ज्योतिर्बिन्दु । आँखों से नाक से, कान से, लोमकूपों से नाम प्रवेश करता है । – इन्जेक्शन, नाम करने से ऋषि – ऋण का शोध होता है ।

(२२८) ये ग्रंथ (श्री श्री ठाकुर रचित ग्रंथ राजि) आविभूर्त क्यों हुये ? रामायण, महाभारत पढ़ने का धैर्य नही है । यथेच्छाचार से यथेच्छ भोजन से मन प्राण दुष्ट हो गये हैं इस लिये यह ग्रंथराजि आविर्भूत हुई है । इस ग्रंथ समूह के पाठ से आनन्द लाभ कर पायेगा साधारण मनुष्य । किसी का कोई आक्षेप नही रक्खा है (भगवान नें) ।

(२२९) वस्तु एक ही है। - आँखों से उसे रुप बोलकर लेता है। कान उसे सुनते हैं। त्वचा स्पर्श करती है। जिह्वा आस्वादन करती है। वस्तु एक ही है।

(२३०) शास्त्र ने उच्च कण्ठ से घोषणा की है - तुच्छ विषयानन्द के अतिरिक्त दूसरा भूमा महान आनन्द है जो मनुष्य इस देह में लाभ कर सके, इस युग में मात्र नाम कीर्तन द्वारा पाने में समर्थ हो सकता है।

(२३१) मूल सत्य एक है। उनकी इच्छा हुई - 'बहु स्याम् प्रजायेय' बहु होऊँगा जन्म लूँगा, वे ही बहु रुप धारण करके लीला कर रहे हैं - यही सृष्ट्युन्मुखी गति।

केन्द्राभिमुखी गति जब आती है तब उनका शास्त्र का अवलम्बन करके परमानन्दमय भगवान को पाने के लिये साधना करने लगता है। साधना करते करते अनुभूति पाता है, फिर वह अपने हृदय में अपने हृदय रमण प्राप्त कर उन्ही में डूब जाता है।

(२३२) परमानन्द हृदय में है। अन्तर्मुख होते ही उस सागर का सन्धान मनुष्य पा जाता है।

(२३३) जो प्रथम आसन पर नाम को बैठा लेता है उसे फिर और कुछ सोचने विचारने की आवश्यकता नही; द्वितीय आसन श्री भगवान ग्रहण कर लेते हैं। अर्थ नाम ग्राही के चरणतल में लुंठित होता है ।

(२३४) नाम, नामी अभिन्न । कृष्ण, कृष्ण जप करना और कृष्ण के संग रहना – एक ही बात है । केवल पुकारो । उठते बैठते खाते – सोते, नियम अनियम, अवहेलना से श्रद्धा से – केवल पुकारो ।

(२३५) जो काम करता है उसके ही मन में प्रश्न उठते हैं । दूसरों के प्रश्न उठते नही ।

(२३६) बाबा को – जो जितना नाम करता है उतना वह बाबा से प्रेम करता है, तुम्हारा बाबा नाम से बहुत प्रेम करता है । सदा सर्वदा नाम सुनाओ ।

(२३७) अति बड़ा महापापी यदि अनन्य भाव से गुरु चरणों का आश्रय करे, गुरुदेव का शरणापन्न होता है तो उसे और कोई साधन करना नही पड़ता ।

(२३८) नियम है दो बार खाने का, दिन में एक बार, रात्रि में एक बार । "तपोनानशनात्

परः" अनशन की अपेक्षा परम तपस्या कोई और नही, इसके द्वारा उपवास का फल लाभ होता है ये सब (इन्द्रियाँ) अन्तर्मुख हो जाती हैं।

(२३९) वाक् से ही यह विश्व उत्पन्न हुआ है। इस कारण जो शान्ति लाभ करना चाहते हैं, साधनपथ पर चलना चाहते हैं उन्हें दिन में किसी एक निर्दिष्ट समय पर ठीक जैसे कि सवेरे दो तीन घंटे मौन रहना उचित है।

(२४०) यथाकाल उपासना के फलस्वरुप प्रथम मंत्र शक्ति की सहायता मिलती है, एवं द्वितीय होती है समय की सहायता। उन समयों में सूर्य से सात्विक परमाणुओं की वर्षा होती रहती है मन अवशभाव से अन्तर्मुख होता है। प्रथम तीनों समय बैठने का अभ्यास होने पर सत्वगुण बढ़ने से नींद कम हो जाती है। तब रात्रि में बैठा जा सकता है। तीनों समय होता है - रात जाती है दिन आता है - भोर। दिन जाता है रात आती है - संध्या समय; और मध्यान्ह बारह बजने के चौबीस मिनिट पूर्व तथा पश्चात्।

(२४१) इस समय (साधना के समय) चलते चलते फिसल जाता है। उसमें क्या होता है – पतन होता है – प्रारब्धवश। प्रारब्ध समझा जाय किस तरह ? कोई बुरा कर्म किया परन्तु उसके बाद सभी को बोल दिया अथवा प्रायश्चित्त कर लिया। इसे समझा जाता है प्रारब्ध। ऐसा नही होने से उसमें डूब जाय तो समझना नूतन कर्म है।

(२४२) पतन के बाद उत्साह बढ़ता है। फूल जैसा हल्का होकर अग्रसर होता जाता है। गंगा स्नान करने निकले, मार्ग में बाधा आई, हो सकता है मौत आ जाय। किन्तु निकला तो था गंगास्नान के उद्देश्य से, जाऊँगा बद्रीनारायण, रास्ते में चढ़ाई उतराई तो पार करनी ही पड़ेगी। नीचे उतरने के समय उसे दिखाई नही देता है। वह नीचे उतर गया; इसके बाद तो ऊपर चढ़ेगा ही।

(२४३) शुद्धाहार सदाचार, यथाकाल उपासना, इन तीन के द्वारा उनकी कृपा की वर्षा होती है। सहायता ऊपर से आवेगी।

(२४४) जैसे जैसे देह शुद्ध होगी वैसे वैसे मन अन्तर्मूख होगा, बाहरी आकांक्षा कम होती जायेगी ।

(२४५) 'मैं' (अहंकार, अभिमान) रहने से कुछ नही होगा, (लवडंका), जितना दुःख है सब बाहर की वस्तुओं को लेकर, देह बोध 'मैं देह हूँ' यह अज्ञान ही सभी दुःखों का मूल है ।

(२४६) जो कोटि स्वर्ण मुद्रा पाता है । वह क्या कभी एक कपर्दक (कौड़ी) पाने की इच्छा करेगा ? इसी प्रकार जिसने भीतर का आनन्द पा लिया वह क्या तुच्छातितुच्छ रमण–सुख की कामना करेगा ? वह तो बहुत ऊँची जगह पर पहुँच कर स्थित है । जहाँ ये क्षुद्र जागतिक सुख पहुँच ही नही सकते ।

(२४७) रमण सुख ही यदि सब होता तो वेश्याओं के समान सुखी जगत में कोई नही रहता, रमण सुख ही यदि सब होता तो लम्पट पुरुष के समान जगत में कोई दूसरा सुखी नहीं होता ।

(२४८) चंचल हौय मन हाथे घड़ी वाँधले ।

शान्ति यदि चाहो तुमी फेलो घड़ी खुले ॥

(२४९) सभी व्यापारों में समय की अपेक्षा करनी पड़ेगी, वे अच्छा ही कर रहे हैं ।

(२५०) जोर जोर से नाम करने से - पशु पक्षी वृक्ष - लता ये सब नाम सुनकर पवित्र होंगे, नामकारी शुद्ध होगा, और एक बात - जो पाँच सौ फुट दूर हैं, नाम नही सुन पाते हैं हवा में नाम जा कर वातावरण को पवित्र कर देगा, जो लोग दूर हैं वे भी कृतार्थ होंगे, उसी वायु में श्वास - प्रश्वास लेने से अन्तर भी शुद्ध होगा ।

(२५१) ये स्त्री पुरुष का आकर्षण, उसका कारण है - स्त्री पुरुष दोनों को लेकर सृष्टि, जैसे एक ईंट; ईंट है उसे देख पाता हूँ;- यह प्रकृति और जिसे देख नही पाते, जिसने ईंट को धारण कर रक्खा है वह हुआ पुरुष। इसीलिये हम लोगों ने पाया - जिसे देखा जाता है वह प्रकृति और जिसे देखा नही जाता वह है पुरुष ।

(२५२) पापक्षय होता है यह कैसे जान पाओगे ? नाम अच्छा लगेगा, पितामाता के प्रति भक्ति आवेगी, शास्त्र ग्रंथ अच्छे लगेंगे ।

(२५३) प्रथम अभिमान रहता है कि साधना करके तुम्हें (भगवान) पाऊँगा, किसी के बाप की शक्ति नही कि साधना करके तुम्हें पकड़ पाये। जब 'अब मेरा वश नही मैं नही कर सकता' कह कर सब भार उन पर छोड़ देते हैं तब ही पकड़ में आते हैं।

सती नारी

(२५४) गुरु भ्राता किंवा साधु, परमहंस कोई क्यों न हो - पुरुष तो पुरुष है। उनके संग मिलना जुलना करना, किसी प्रकार उचित नहीं, यही वाणी और साधुगणों का उपदेश।

(२५५) सतीत्व परम रत्न भारत नारीर।
स्वामीसेवा महाव्रत जेनोगो जननी ॥
स्वामीर चरणे मन रेखो सदा स्थीर।
असीम आनन्दे रवे दिवस जामिनी ॥

(२५६) स्त्रियों को यज्ञ, दान, तपस्या, व्रत कुछ नहीं करना पड़ता है। मात्र 'मेरे पति ही

नारायण हैं' इस बोध से पति सेवा करने से ही सब कुछ हो जायेगा ।

(२५७) पतिव्रता नारी के पुण्य से उसके पिता माता पति ये ही तीन कुलों के तीन-तीन पीढ़ि के पुरुष स्वर्ग लोक में जाकर सुख भोग करते हैं ।

(२५८) जो स्त्रियाँ सवेरे शाम पतिदेव की पूजा प्रणाम करके पादोदक पान करती हैं वे इहलोक और परलोक को विजय करने में समर्थ हो जाती हैं नाम करते करते स्वामी सेवा करने वाली नारी के पास श्री भगवान दौड़कर आते हैं ।

(२५९) पतिव्रता के चरण पृथ्वी के जिस जिस स्थान को स्पर्श करते हैं वे वे स्थान तीर्थ भूमि सदृश माननीय; उस भूमि का कोई भार नही रहता, वह स्थान परम पावन हो जाता है ।

(२६०) पतिव्रता का पति समस्त पातकों से मुक्त हो जाता है । राम, राम सीताराम, सती गणों के व्रत के प्रभाव से उनके पतियों को कर्मफल का भोग नहीं करना पड़ता, वे सारे कर्म बन्धनों से मुक्त होकर पत्नी

सहित भगवान विष्णु के वैकुण्ठ में आनन्द भोग करते हैं।

(२६१) प्रेतिनी, पिशाची, राक्षसी, दानवी, डाकिनी अन्य कोई नही - असती नारी। उनके लिये कुछ भी अकार्य नही, उनके वक्ष में प्रतिदिन ज्वाला श्मशान की तरह धधकती रहती है, वे निरन्तर तुषानल की तरह दग्ध होती रहती है।

(२६२) पृथ्वी पर जितने भी तीर्थ हैं वे सब सती साध्वी नारी के चरणों में विद्यमान है। सम्पूर्ण देवता वृन्द एवं मुनिगणों का जो तेज है वो तेज सती नारीगणों में स्वभावतः अवस्थान करता है।

(२६३) सती नारियों के पादपद्मों की धूलि से पृथ्वी उस समय पवित्र होती है। जिस गृह में सती नारी अवस्थान करती है उस घर में रोग शोक, अभाव, ज्वाला, यंत्रणा आदि प्रभाव नही दिखा सकते हैं।

(२६४) सतीत्व, पातिव्रत्य भारत का वैशिष्टय है, अन्य देशों और अन्य जातियों में नही। इसीलिये उन देशों में दाम्पत्य सुख नही, उन देशों के नर नारी परिणाम स्वरूप ज्वाला ही भोग करते हैं।

(२६५) क्या पुरुष क्या स्त्री सभी के लिये चरित्र अमूल्य निधि है। यह धन एक बार खो जाने पर फिर नही मिलता है। बड़ी सावधानी से सभी स्त्री पुरुषों को इस धन की रक्षा करनी चाहिये।

(२६६) जो साधु लोग स्त्री पुरुषों के यथेच्छ आहार और बिहार का अनुमोदन करते हैं शान्तिकामी नर नारी को उनसे दूर से ही पीछे हट जाना चाहिये।

(२६७) बड़े लोग व गरीब लोग शिक्षित, अशिक्षित नही है। स्त्री पुरुष के समीप होने से ही चित्त क्षुब्ध होता है। अग्नि का ताप बड़े लोग और गरीब सभी को समान रुप से लगता है।

(२६८) स्वामी सेवा के अविरोध में जप पूजादि करना चाहिये। पति एक लोटा जल नही पाता है, भोजन पाते नही स्त्री जप में मग्न है। ऐसा आचरण करना किसी रुप में उचित नही।

(२६९) चाहे घी जिस पात्र में ही रखा हो अग्नि का ताप लगने से गल जायगा ही। इसी लिये चरित्रवान सत्पुरुषों का कर्तव्य है, परस्त्री से दूर रहें एवं सच्चरित्र

रमणीगणों का अवश्य कर्तव्य है पुरुषों से सतत दूर में ही अवस्थान करे ।

(२७०) कोई भी सम्बन्ध करके जो नारी पुरुष के संग घनिष्ठता करती है । उसको इसी जन्म में चक्षुओं से जल बहाना पड़ता है, और परलोक में अनन्त नरक - राम राम सीताराम, जय जय राम सीताराम ।

(२७१) धर्म का लड़का, भिक्षापुत्र, गुरुभाई आदि जो कोई सम्बन्ध स्थापित करके जो नारी पुरुष को प्रश्रय देती है स्नेह करती है उसके फल स्वरुप परस्पर आकर्षण उपस्थित होता है । परस्पर के आकर्षण में अंत में अधःपतन हो जाता है इसीलिये माताओं को स्वामी से भिन्न किसी से भी प्रेम नही करना चाहिये ।

(२७२) अनेकों पुरुष यदि कोई भी नारी को सकाम दृष्टि से देखें तो उसका सतीधर्म क्षुण्ण होता है । इस कारण सादी वेशभूषा में रास्ते घाट पर बाहर निकलना चाहिये जिससे किसी की दृष्टि आकर्षण न करे ।

(२७३) कोई भी अपने को कामजयी, निरापद न समझे, जितने दिन मृत्यु न हो उतने

दिन क्या स्त्री और क्या पुरुष सभी को सावधानी से आत्मरक्षा करना कर्तव्य है ।

जिस जिस आचरण से नारीगणों का सतीधर्म क्षुण्ण होता है-

(२७४) पर पुरुष के साथ गप्पें मारना, आलाप करना ।

(२७५) पुरुषों के मुँह की ओर देखकर बातें करना ।

(२७६) पुरुष को जो कोई बहाने से स्पर्श करना ।

(२७७) पुरुष के हाथ से हाथ में जल, पान, खाने की वस्तु फूल या अन्य कोई भी द्रव्य देना ।

(२७८) पर पुरुष अच्छा लगना, पुरुषों के दल में अवस्थान करना, पुरुषों से कथोप-कथन ।

(२७९) खिड़की से पुरुषों को ताकते रहना, हाट, बाजार या दुकान में वस्तुयें खरीदना ।

(२८०) पुरुष की ओर इंगित करना वा पुरुष के इंगित का अनुमोदन करना अर्थात् पुरुष के इंगित का प्रतिवाद न करना ।

(२८१) कोई बहाने से पुरुष से बातचीत करना, पुरुष की बात अच्छा लगना, कान लगाकर पुरुष की बातें सुनना ।

(२८२) स्वामी, पिता, पुत्र से भिन्न अन्य किसी के साथ स्थानान्तर में यातायात करना, दूसरे पुरुषों की तो बात ही क्या, देवर भ्राता, मामा प्रभृति संग भी जाना ।

(२८३) स्वामी संग रहने पर भी पुरुषमण्डली संग तीर्थादि भ्रमण करना ।

(२८४) पुरुष गणों के बातचीत के बीच में बात करना ।

(२८५) पुरुष को आदर पूर्वक ठहरने का अनुरोध करना ।

(२८६) पुरुष के संग पत्र आदि आदान प्रदान करना ।

(२८७) पुरुष के संग फोन में बात करना ।

(२८८) बिना प्रयोजन के पुरुष के सम्मुख होना, पुरुष के पास पास टहलना ।

(२८९) पुरुष के मुख से अपने रुप और गुण की प्रशंसा सुनना ।

(२९०) बहुत से पुरुष जिस नारी को सस्पृह दृष्टि से देखते हैं उसका सतीधर्म क्षुण्ण होता है इसीलिये मुखावरण (घूँघट) की प्रथा चली आई है ।

सती का आचरण

(२९१) सती नारी छाया की भाँति सर्वदा स्वामी-संग ही अवस्थान करे । स्वामी को छोड़कर किसी विशेष प्रयोजन से भी कही भी न जाये ।

(२९२) स्वामी की त्रिकाल पूजा कर, स्वामी का चरणामृत पान करे, स्वामी के भोजन काल में पास में बैठकर पंखा झले ।

(२९३) स्वामी की बात का अवनत मस्तक से प्रतिपालन करे । कभी भी प्रतिवाद न करे ।

(२९४) पुरुषों से सतत दूर रहे ।

(२९५) मुख को आवरण (घूँघट) कर रखे। पुरुषों की ओर न देखे।

(२९६) पुरुषो के संग आलाप न करे प्रयोजन होने पर नतदृष्टि से पुरुषों की वार्ता का उत्तर मात्र दें पुरुषो से घनिष्टता न करे, प्रश्रय न दे।

(२९७) पुरुष को आदर सत्कार न करे।

(२९८) स्वामी के बन्धु-बान्धवों प्रति भी आग्रह शील न होवे, पुरुषों का आदर पुरुष द्वारा करावे।

(२९९) सभी प्रयत्नों से स्वामी की सेवा करे, स्वामी और गुरुजनों की सेवा काय मनो वाक्य से करे।

(३००) प्राणपण से ससुर, सास की सेवा करे।

(३०१) पुत्रों और कन्याओं को सद् शिक्षा और सात्विक आहार देवे, नित्य उपासना करवाये।

(३०२) अन्य पुरुषों की तो दूर की बात – भगवान हों, गुरु हों, गुरु पुत्र हों, परमहंस हों, साधु, गुरु भ्राता जो कोई हो, पुरुष तो पुरुष ही है यही बोध में स्थिर रहके

उनकी सेवा करे। पुरुष को कोई प्रकार से निर्जन में बातचीत करने का अवसर न दे।

(३०३) सती नारी पुरुष मात्र को पिता अथवा पुत्र के समान देखे।

(३०४) सती नारी की दृष्टि कभी भी पुरुष की ओर न उठे, नीचे की ओर रहेगी पर-पुरुष के मुख दर्शन सम अपराध दूसरा नहीं।

(३०५) सती नारी इहलोक में पति नारायण की सेवा करके रोग, शोक, दुःख - ज्वाला से चिरमुक्त होकर वैकुण्ठ वास करेगा और परलोक में वैकुण्ठ का द्वार उसके लिये चिर उन्मुक्त खुला रहेगा।

स्त्री का सर्वनाश करने वाले हतभाग्य पति के लक्षण

(३०६) बन्धु - बान्धवों अथवा अन्य पुरुषों के निकट पत्नी को ले जाकर उनके संग

हास परिहास कराना, सभी के सहित अथवा अकेले के साथ स्त्री का भोजन करना ।

(३०७) गृहागत बन्धु - बान्धवों की सेवा का भार स्त्री पर देकर स्वयं अन्यत्र रहना ।

(३०८) पत्नी को पर पुरुषों के साथ मेल मिलाप रखने को बाध्य करना ।

(३०९) पत्नी द्वारा पुष्पमालादि द्वारा मित्र को सजवाना, पत्नी द्वारा मित्र के हाथ में चाय, पान, नाश्ता प्रदान करवाना ।

(३१०) मित्र के संग पत्नी को थियेटर, नाटक, सिनेमा आदि देखने भेजना, मित्र के साथ अबाध घूमने फिरने का अधिकार देना ।

(३११) मित्र से पत्र का आदान प्रदान करने का पत्नी को आदेश करना ।

(३१२) पर पुरुषों से टेलीफोन पर बातचीत करने का अधिकार देना ।

(३१३) स्त्री को निर्लज्जता पूर्वक पुरुषों से वार्तालाप करने का आग्रह करना ।

(३१४) पुरुष मण्डली संग स्त्री को लेकर

देश-विदेश भ्रमण करना ।

(३१५) स्त्री को सर्वतो भाव से स्वेच्छाचार करने का अधिकार देना ।

(३१६) विशिष्ट सभा समितियों में स्त्री को गायन और स्तुति आदि करने का अधिकार देना ।

(३१७) 'स्त्रीजित' अर्थात् पत्नी के आज्ञाकारी भृत्य की भाँति रहना ।

(३१८) स्त्री की बात पर प्रतिवाद करने की सामर्थ्य का अभाव ।

(३१९) सर्वदा स्त्री के मन के अनुसार, स्त्री के चरित्र पर अन्धाविश्वास करना ।

(३२०) स्त्री का पर पुरुष के प्रति आकर्षण देखकर भी उदासीन भाव से रहना ।

सधवा कल्याणकामिनी का कर्तव्य

(३२१) ब्राह्म मुहूर्त में शय्या पर बैठे हुये गुरुदेव का मस्तक में, इष्टदेव का हृदय में ध्यान करते हुये मानसोपचार पूजा और यथाशक्ति जप के अंत में शय्या त्याग करेगी, स्वामी

नींद में हो तो भी उन्हें दण्डवत् प्रणाम करके शौच, गृहमार्जन, लेपन इत्यादि अन्यान्य कर्म करके स्नान करेगी। स्वामी को नित्य तीन बार प्रणाम करे। स्वामी स्वयं नारायण है – यही भाव सदा मन में रक्खे।

(३२२) स्वामी काम पर जाते हों, उनके लिये भोजन बनावे, जिह्वा में कभी नाम लेना बन्द न करे, स्वामी के चरणों में पुष्पांजलि देकर उनका चरणामृत ग्रहण पूर्वक उन्हें भोजन करावे, भोजन करते समय यदि संभव हो हवा करे, स्वामी के भोजन के अंत में ताम्बूलादि दे, अन्य कोई साधन भजन नही करते भी स्वामी सेवा के द्वारा ही नारी परम गति लाभ करने में समर्थ होती है।

(३२३) स्वामी के काम पर जाने पर पूजा, जप, ध्यान, पाठ करेगी। श्री महारसायन, श्री नामामृतलहरी, श्री अभयवाणी, श्री सुधाधारा, मातृगाथा, आओ लौट आओ माँ, विश्वजननी रमणी, इनका नित्य यथासाध्य पाठ करे, तीन बार प्रार्थना करे।

(३२४) श्वसुर और सासु, अन्यान्य गुरुजनों के रहने पर उन्हें तीन बार प्रणाम करें, उनकी देवता तुल्य सेवा शुश्रूषा करे, उनकी आज्ञा का सादर पालन करे, उनके साथ कलह न करे ।

(३२५) पुत्र कन्याओं की अतिथि की भाँति सेवा-यत्न करेगी, वे कब चले जायेंगे स्थिर नही, उन्हें नित्य दो समय जप करवाये ।

(३२६) पुत्र कन्याओं प्रभृति का, भोजन का ध्यान रखे, यथेच्छा भोजन न करने दे, मांस, अण्डा, प्याज प्रभृति उत्तेजक भोजन आहार न दे । सामर्थ्य के अनुसार पौष्टिक पदार्थ, दूध, घी द्वारा ही पुष्टि वर्धन करेगी ।

(३२७) पुत्र कन्याओं को मारे पीटे नही; गालियाँ न दे, अन्याय करने पर मीठी वाणी में समझावे, शासन के नाम पर उन्हें झूठी बात न सिखावे, अर्थात् 'आज तुमको काट दूँगी' कहकर, शासन करने से काटा तो नही वरन् झूठ सिखाना हो गया, एक पैर पर खड़ा रखना, बात न करना इत्यादि इसी प्रकार के दण्ड दे ।

(३२८) घर, द्वार, शय्या, वस्त्र सवर्दा स्वच्छ रखे; आलस्य वश न होवे, भोजनादि होने पर, संभव हो तो अकेले या पड़ोस में निवास करनेवाली के साथ महाभारत, श्रीमद् भागवत, रामायण का पाठ करे ।

(३२९) स्वामी के ब्रह्मचर्य रक्षा के लिये सहायिका होवे, स्वामी यदि अनुमति दें तो एकादशी के दिन अन्न भोजन नही करे ।

(३३०) पुरुषों से दूर रहे । पुरुषों के दल के बीच में कही न जाये, पिता, भाई वा युवा पुत्र के साथ भी निर्जन अवस्थान न करे ।

(३३१) अन्य पुरुषों की बात तो दूर - साधु, परमहंस, गुरु, भगवान जो कोई होवे,- पुरुष तो पुरुष ही है उनके साथ सम्बन्ध में सावधान रहेगी, पुरुषों को स्पर्श न करे ।

(३३२) पुरुषों की दृष्टि से सतत अपनी रक्षा करे । दूसरों की दृष्टि आकर्षित हो ऐसे रंगीन वस्त्र व साज पोशाक करके कही न जाये । साधारण वेष भूषा व्यवहार करे ।

(३३३) गो सेवा करे, यथासाध्य यत्न पूर्वक

अतिथि सेवा करे, भिखारियों को जो कुछ देवे, भगवान को देती हूँ मन करके दे, नाम करते करते सकल वस्तु को प्रणाम करने का अभ्यास करे ।

(३३४) संसार भगवान का है, हम दास दासी है, इसी भाव से संसार करे ।

(३३५) मीठी वाणी बोले – रुक्ष और कटु वाक्यों से किसी को व्यथा न दे ।

(३३६) स्वामी के विदेश रहने से उनके फोटो की पूजा करे ।

कल्याणकामिनी विधवा के कर्तव्य

(३३७) ब्राह्म मुहूर्त में शय्या पर बैठकर मस्तक में गुरुदेव का ध्यान, हृदय में इष्टदेव का ध्यान करते हुये मानसोपचार पूजा करके यथाशक्ति जप के अंत में शय्या त्याग करे ।

(३३८) स्नान तीन बार करे, यदि स्नान सहन न हो तो एक बार स्नान दो बार भीजे अंगोछा से शरीर पोंछ ले, सर्वदा नाम करे ।

(३३९) जो संसार में रहे वह संसार के काम पूरा

करके अपने लिये जप ध्यान का समय निकाल ले, श्रीमद् भागवत, श्री रामायण, श्री महारसायन, श्री नामामृत लहरी, श्री अभय वाणी, सुधा की धारा, सुविधा-नुसार समय निकाल कर पाठ करे, तीन बार प्रार्थना करे।

(३४०) एकादशी का उपवास और अन्यान्य पर्वो में भी उपवास करे।

(३४१) पुरुषों से दूर रहे, पुरुषों के साथ किसी प्रकार की बातचीत न करे, पुरुष के साथ निर्जन में न रहे। पुरुष के मुख की ओर देखकर बात न करे।

(३४२) साज श्रंगार न करे सिर के बालों को कटा दे, सात्विक आहार करे, मिताहार करे, दिन रात में दो बार ही भोजन करे, उठते, बैठते, खाते - सोते नाम करे।

(३४३) विधवा का जीवन विफल नहीं; वहिर्मुख चित्त को अन्तर्मुख कर सकने से भीतर प्रचुर आनन्द लाभ करने में समर्थ हो सकती है, मनुष्य के हृदय में आलोक, पुलक, आनन्द और नाद भरा है। कितनी राग - रागिनियाँ स्वतः ही भीतर ध्वनित हो रही हैं। किसी प्रकार एक बार

वहाँ जा सकने से कृतार्थ हो जाओगे। श्री भगवान हैं - मनुष्य उनके दर्शन लाभ करने में समर्थ हो सकता है। दर्शन की आकांक्षा जगाने के लिये ही प्रार्थना करेगी।

गृहस्थ

(३४४) ब्राह्म मुहूर्त में शय्या पर बैठकर मस्तक में श्री गुरुदेव का, हृदय में इष्ट देवता का ध्यान करते हुये मानसोपचार पूजा पूर्वक यथाशक्ति जप करके, पृथ्वी को प्रणाम के अंत में शौचादि जावे।

(३४५) यथाकाल उपासना करे, नित्य त्रिसन्ध्या करना ब्राह्मण मात्र का आवश्यक कर्तव्य है। प्रातः, मध्यान्ह और सन्ध्या समय प्रार्थना और जप, ध्यान करे, अन्य वर्ण जप ध्यान और प्रार्थना करें।

(३४६) श्री गीता, श्री विष्णु सहस्रनाम, श्री चण्डी, श्री महारसायन, श्री नामामृतलहरी, सुधा की धारा, अभयवाणी प्रभृति का पाठ करें।

(३४७) जो लोग नौकरी करते हैं उन्हें प्रातः ही

मध्यान्ह जप आदि एक साथ ही कर लेना चाहिये, कर्म स्थान में जाकर काम शुरु करने के पहले 'शक्ति दो' कह कर कार्य आरम्भ करेगा और कार्य के अंत में 'फल ले लीजिये' बोलकर प्रणाम करते हुये घर आकर यथासाध्य जप ध्यान करेगा, प्रार्थना करेगा ।

(३४८) नाटक, उपन्यास आदि न पढ़े, संवाद पत्र भी चित्त - विक्षेप करते हैं; भक्तिग्रंथ या जिनसे भगवान का नाम लेने में उत्साह वृद्धि हो उन्ही पुस्तकों को पढ़े अधिकारी विशेष महाभारत, मोक्षधर्म पर्व और उद्धवगीता, श्रीमद् भागवत, रामायण आदि का पाठ करे ।

(३४९) सात्विक आहार ही वांछनीय है, जो मछली खाना छोड़ने में असमर्थ हों, वे अमावस्या, पूर्णिमा, अष्टमी, चतुर्दशी एकादशी तथा रविवार को मछली न खायें, मांसभोजी प्रसादी मांस के अतिरिक्त दूसरा न खायें, त्याग करना ही उत्तम है, सात्विक प्रकृति के लोगों के हाथ का ही खायें, जिस किसी के हाथ का न खायें ।

(३५०) परस्त्री से दूर रहे, माता, भगिनी या कन्या के साथ भी निर्जन में न रहे, ब्रह्मचर्य शरीर और साधना का प्राण है। ब्रह्मचर्य रखने के लिये प्राण पण करें।

(३५१) ऋतु काल में महीने में एक दिन स्त्री से गमन करने से गृही ब्रह्मचारी में गिना जाता है।

(३५२) जितना संभव हो उतना सत्संग करे। सर्वदा नाम करने की चेष्टा करे। नियमित अकेले अथवा साथियों सहित कुछ समय तारक ब्रह्म नाम संकीर्तन करे।

(३५३) सत्य वचन बोले - सत्य ही श्री भगवान हैं। जो सत्य का आश्रय करने में समर्थ है वे शीघ्र ही गंतव्य स्थान में उपस्थित हो सकते हैं।

(३५४) असत् संग, असत् आलाप और जो कोई नशे का त्याग करना, सर्वदा शुचि रहे, 'आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः'- आचारहीन को वेद भी पवित्र नही कर सकते।

(३५५) संभव हो तो गुरुजनों को नित्य तीन बार प्रणाम करे। सब श्री भगवान की देह -

ऐसे बोध से सभी वस्तुओं को मन ही मन प्रणाम करने का अभ्यास करे ।

(३५६) अतिथि आने पर सादर ग्रहण पूर्वक यथा शक्ति सेवा करे, भिक्षुओं को दान देते समय भगवान को ही दे रहा हूँ ऐसा भाव मन में रखने की चेष्टा करे ।

(३५७) नित्य गो-ग्रास दे, वैश्वदेव बलि दे, गोमाता को प्रणाम करे सामर्थ्य हो तो गोपालन करे । सेवा करे ।

(३५८) पुत्र कन्या वा कनिष्ट भाइयों के सम्बन्ध में सतर्क दृष्टि रखे, जिससे वे लोग कुसंग में न पड़े, नाटक, उपन्यास आदि न पढ़ें, इसकी व्यवस्था करे, सदग्रंथ पढ़ने देवे, नित्य दोनों कालों में जप आदि करावे शौचाचार की शिक्षा दे ।

(३५९) उन्हें समझाये चाहे जहीं कही हर किसी के हाथ का जब कभी भोजन करना उचित नही ।

(३६०) पुत्र कन्याओं पर सर्वदा दृष्टि रखे, असत् संग से किसी कुअभ्यास के वश होने से बचावे, पुत्र कन्याओं को कुसंग में किसी भी प्रकार सम्मिलित न होने दे ।

(३६१) बालक बालिकाओं को अंडा, मांस, प्याज, चाय आदि उत्तेजक पदार्थ खाने न दे, उनकी पुष्टि के लिये दूध अथवा अच्छा घी की व्यवस्था करे, जो लोग बालक बालिकाओं को उत्तेजक पदार्थों द्वारा पुष्ट करना चाहते हैं उन्हें अंत में पश्चात्ताप ही करना पड़ता है, मिठाइयाँ भी परिमित मात्रा में ही देनी चाहिये।

(३६२) परिवार के सदस्यों से सद् व्यवहार करना चाहिये, कठोर वचन नहीं बोलने चाहिये, स्त्री को भी दुर्वाक्य न कहे, प्रहार तो कभी नही करना चाहिये, अन्याय करने पर यथाशास्त्र शासन करे, मीठे वचन बोले, मीठी वाणी वशीकरण का मत्रं है। - मीठे वचनों द्वारा सभी को वश में किया जा सकता है।

(३६३) प्रत्येक मनुष्य का काम्य है श्री भगवान को लाभ करना, जो कोइ भी आयोजन इसी के लिये है। सर्वदा नाम, सत्संग, सद् ग्रंथ, संकीर्तन ये ही जीवन का संबल करे, संसार श्री भगवान का है, मैं दास हूँ, इसी भाव से संसार करे।

(३६४) पिता-माता जीवित हों तो देवता की भाँति

उनकी सेवा करे, पुष्पादि द्वारा पूजा करे, चरणामृत पान करे उनकी आज्ञाकारी होकर रहे, अन्यान्य गुरुजनों की भी साध्यानुसार सेवा करे ।

(३६५) श्राद्ध, तर्पण, देव सेवा, गो सेवा, यथाकाल उपासना करे, सर्वदा नाम लेके रहने की चेष्टा करना आवश्यक कर्तव्य है ।

(३६६) इस जगत में ऐसा कुछ भी नही जो अविचलित अध्यवसाय द्वारा साधन न किया जा सके । जो व्यक्ति निरन्तर अध्यवसाय का अवलम्बन करे तो समयान्तर में, एकदिन स्थूलमति का आदर्श हो वो भी मतिमान गणों में अग्रसर स्थान में अधिकार कर सकता है ।

(३६७) तत्वतः किसी भी व्यक्ति के लिये कोई भी विषय साधन करने से सिद्ध होना असंभव नही हैं श्रम परांमुख आलसी लोग अपनी मेधा, बुद्धि अथवा नियति को दोष वखान करके ज्ञान रत्न को लेने से अथवा विषय विशेष को जानने से विरत होते हैं ।

(३६८) प्रस्तर पर घिसने होने से क्षय होता है

इस वाक्य को हर समय हृदय में धारण करके स्थूलमति व्यक्ति भी अध्यवसाय करेगा तभी वह क्रमशः मन में सोचेगा कि यह विषय उतना दुःसाध्य नहीं है जितना मैंने पहले सोचा था। कोई एक बार कोई दो बार और कोई तीन बार अनुशीलन करने पर समाधान करता है।

(३६९) जिसमें जो शक्ति अल्प होती है, सतत चेष्टा द्वारा वह उस शक्ति को अवश्य ही विजयी होता है। मैं तो स्थूल बुद्धि हूँ किस प्रकार अति सूक्ष्म अति साध्य इस विषय को सम्पादन कर सकूँगा। यह सोचकर उस काम से निवृत होना का पुरुषों का लक्षण है।

(३७०) "मैं" तो शक्तिशून्य हूँ मैं कैसे इतना कठिन कार्य साधन कर सकूँगा – ऐसे जो लोग सोचते हैं उसके लिये सुसाध्य भी असाध्य हो जाता है, "मैं अवश्य ही इस कार्य को करने में समर्थ होऊँगा" ऐसा दृढ़ संकल्प करनेवाला मनस्वी का दुःसाध्य कर्म भी क्रमशः सुखपूर्वक सम्पन्न हो जाता है।

(३७१) उनका स्वरुप जानने के लिये शास्त्रों का

पाठ करना होता है। शास्त्रों के भिन्न उनके स्वरुप को कौन बोल सकता है। जिनके निःश्वास से वेद पुराणादि शास्त्र निकले हैं - वे शास्त्र ही क्या उनके महिमामय स्वरुप को बोलने में समर्थ हो सकते हैं ? - नही, वे नही हो सकते यत्किञ्चित् दिग्दर्शन मात्र करते हैं।

(३७२) तुम लोगों को उदात्त आहवान आ गया है। आओ और दूर मत रहो, मेरे माणिक, मेरे गोपाल, आगे आओ, जाने के पाथेय का संग्रह करो, प्रत्येक दिन दो घन्टा, सप्ताह में दो घन्टा, प्रतिपक्ष में दो घन्टा अथवा महीने में दो घंटा करके - जिसके जैसी सामर्थ्य हो, नाम प्रचार में, पुस्तक प्रचार में 'पथ का आलोक' के प्रचार में किंवा नामोत्सव में योगदान करके तुम लोग धन्य होओ।

(३७३) सर्वदा शुचि, अशुचि में उठते - बैठते, खाते - सोते जो नाम कर सकते हैं वे ही संतोष-अमृत लाभकर धन्य होते हैं।

(३७४) संतोष अमृत का पान करके जिनका चित्त शान्त हो गया है जगत का कोई भी दुःख

उनके पास जा नही सकता । वे सतत आनन्द में अवस्थान करते हैं । दुःख, कष्ट आधि - व्याधि दूर ही से उन्हें प्रणाम कर पलायन करते हैं ।

(३७५) धर्म संचय के लिये जो समस्त पथ हैं उनमें 'दया' प्रशास्ततम मार्ग है । दयावान मनुष्य ही साधु के नाम से निर्दिष्ट होकर रहता हैं मरकर अमरपद लाभ करते हैं ।

(३७६) क्षण भंगुर कलेवर को पाकर नर रुप में इस धरा पर अवतरण करके सतत यथाशक्ति परोपकार करे । परोपकार ही परम धर्म है । साधुगण परोपकार करके ही यह जीवन चरितार्थ हुआ समझते हैं ।

(३७७) सेवक वृंद का धर्म है प्रभु की आज्ञा का पालन करना एवं राजा का धर्म है सर्वदा प्रजा की सतत रक्षा करना, इस जगत में समस्त प्राणियों की रक्षा करना क्षत्रिय धर्म बोलकर कहा गया है । अतिथि सत्कार के साथ साथ यज्ञ अनुष्ठान करना होता है वैश्यों का धर्म । ब्राह्मण,

क्षत्रिय, वैश्य इन तीनों वर्णों की सेवा करना शूद्र का कर्तव्य कहा गया है, एवं समस्त प्राणियों की हित कामना करना गृहस्थ धर्म है।

(३७८) गुरु-पादुका ध्यान, गुरु ध्यान, मानसोपचार द्वारा गुरु-पूजा, सहस्रार में करनी होती है। बाह्य में गुरु-पूजा, गुरु-पादुका पूजा, स्तव कवचादि पाठ यह होती है गुरु - सेवा। सर्वदा मानस में मंत्र जप, द्विदल में लिखते लिखते मंत्र जप, प्रदक्षिणा - परम गुरु सेवा। मूलाधार में कुण्डलिनी का ध्यान, मानस पूजा, स्तव कवचादि पाठ, उनके द्वारा सर्व शरीर व्याप्त यह ध्यान करना उनकी पूजा और जागृता कुण्डलिनी को षट्चक्र भेदन करके सहस्रार में विन्दुरुपी परम शिव में मिलन करना ही परमेष्ठी गुरु पूजा।

(३७९) जितने समय तुम मेरे नाम रुपी अग्नि में अपने मन रुपी लोहे को डाल कर रखते हो उतने समय वह अग्नि होकर रहता है, तब उसमें विश्व के समस्त पाप ध्वंस करने की शक्ति आती है। तत्पश्चात् जब तुम नाम छोड़कर चुप होकर रहोगे उस समय भोग की वायु लगने से तुम्हारा मन

शीतल होकर जो लोहा था वही लोहा हो जाता है ।

(३८०) विषय लेकर उन्मत्त होकर रहने से दुःख भोगना ही पड़ेगा। निर्जन मेरा बहुत प्रिय है, निर्जन में बैठे बैठे नाम कर और मैं बैठे बैठे सुनूँ। देख नही पाते हो यह बोलकर आक्षेप मत करना। मैं समय की अपेक्षा कर रहा हूँ समय होने पर ही दिखाई दूँगा ।

(३८१) श्री भगवान के शरणापन्न होने के अर्थात प्रपत्ति मार्ग का अवलम्बन करने के अतिरिक्त और कोई उपाय दीखता नही है। हमारे ठाकुर शरणागत वत्सल है। एक बार जो प्रपन्न होकर 'मैं आपका हूँ' बोलकर उनकी शरण ग्रहण करता है वह व्यक्ति जैसा भी क्यों न हो हमारे ठाकुर उसको अभय देते हैं ।

(३८२) शास्त्र अनन्त, जानने के विषय भी बहुत, काल भी संक्षेप, विघ्न भी प्रचुर। इस अत्यल्प अवसर पर बहुत से शास्त्रों की आलोचना करना छोड़कर गुरुदत्त इष्ट मंत्र जिससे सिद्ध होता है यही चेष्टा

करना श्रेयस्कामी भगवद् भक्त मात्र के लिये समीचीन है।

(३८३) स्त्री पुरुषों का अबाध मिलन, जहाँ कही जिस किसी के हाथ का जब कभी असमय अखाद्य - कुखाद्य यथेच्छ भोजन प्रभृति भारतवासियों की उन्नति का उपाय है ऐसा जो लोग मन में सोचते हैं उनका मत - जो भारत के अनुकूल नही है वही इसकी घोषणा कर रहे है गाँव गाँव में अस्पताल, दिन प्रतिदिन (थाइसिस) क्षयरोग के अस्पताल की वृद्धि, कलकत्ता में अगणित माई लोगों के अस्पताल समूह।

(३८४) जो नर-नारी क्षणस्थायी यौवन के कुहरे में आत्मविस्मृत होकर इन्द्रिय सुख भोग को ही जीवन का लक्ष्य मान लेते हैं अंत में उनके दुःख की परिसीमा नही रहती।

(३८५) नही शास्त्रवाणी कभी भी मिथ्या नही हो सकती, समुद्र मर्यादा अतिक्रम, मेरु चलायमन हो जाय, चन्द्र सूर्य ग्रह परिभ्रमण कक्ष का त्याग चाहे कभी भी संभव हो सकता है किन्तु शास्त्रवाणी

कभी भी मिथ्या नही हो सकती, नही हो सकती ।

(३८६) शास्त्र–पथ प्रहरी वेष्टित निरापद राज–पथ है । जो उस मार्ग का एकान्तभाव से आश्रय करता है वह निर्भय हृदय, हँसते हँसते उस अनाम, अरुप राजा के राज्य में पहुँच जाता है ।

(३८७) सुख भोगों में नही है – सुख संयम में, त्याग में, भजन में नित्य विराजमान ।

(३८८) विषयों अर्थात शब्द – स्पर्श – रुप – रस – गंध से जो आनन्द पाया जाता है । वह अति अल्प, इनमें आनन्द की अपेक्षा ज्वाला सौ गुना अधिक है ।

(३८९) इस विषयानन्द से ही परमानन्द का अनुमान किया जाता है उसी प्रकार की एक अवस्था है वह अवस्था प्राप्त होने से मानव ग्लानि–शून्य आनन्द का सर्वदा लाभ करने में समर्थ होता है । यही महा सम्पद है ।

(३९०) प्रति पल–पल मनुष्य के सर्वांगों से दूषित वाष्प निकलती रहती है किसी मेहतर जाति के व्यक्ति ने आपको खाद्य और जल

दिया, आप ने उदार–हृदय से ग्रहण किया केवल ग्रहण ही नही किया, उच्च कण्ठ से बोला "छुआछूत मार्ग कुछ नही है कुछ नही है – ये भी मनुष्य है हम भी मनुष्य है इनके भीतर जो भगवान है वही भगवान हमारे भीतर भी है। यह सब शास्त्रकारगणों की ही कुप्रथा है"

(३९१) मित्रवर क्या सत्य है कि आप सर्वत्र ब्रह्म दर्शन करते है ? यदि यह होता है तो आप धन–सम्पत्ति स्त्री–पुत्र, वस्त्र, परिच्छद आदि का अकेले स्वंय ही भोग क्यों करते हैं ? मेहतर भगवान को हिस्सा करके क्यों नही देते हो ? उनकी कष्टकर वृत्ति का अंश आप भी क्यों नही ग्रहण करते हो ? ब्रह्म तो अखण्ड अपरिच्छिन्न है । यही ब्रह्मज्ञान यदि प्राप्त कर लिया है, यदि अद्वैत ज्ञान हो गया है तो वस्त्र परिधान कैसे धारण कर रखे है ? ब्रह्म की स्त्री क्यों ?

(३९२) अधर्म के द्वारा वृद्धि प्राप्त होती है इसके बाद उसमें मंगल दिखाई देता है । फिर शत्रुओं पर विजय प्राप्त करते हैं और तब इसके बाद समूल विनष्ट हो जाता है ।

(३९३) इस जगत में जो कुछ सम्पन्न हो रहा है, होगा और हुआ था सर्वत्र जगत्कर्ता की अनुकम्पा ही कर्ता की भाँति प्रतिभासित होती है। तत्वज्ञान विमूढ़ मानवगण ही वृथा अंहकार करते हैं।

(३९४) मनुष्य स्वभाव के द्वारा ही देवता की भाँति आदर पाता है। स्वभाव के द्वारा ही पिशाच की भाँति अवज्ञा पाता है ऐसा कोई गुण नही जो स्वभाव को अभिभूत करने में समर्थ हो।

साधु

(३९५) नारियों के मुख की ओर देखते हुये बात करना नही, माइयों के चरणों में सत्वगुण, मध्य देश में रजो गुण और मुख में तमोगुण। आत्मकल्याणकामी ब्रह्मचारी नारियों के मुख की ओर नही देखे। चरणों की ओर देखना चाहिये।

(३९६) स्त्री-प्रिय सजे हुये साधु वेषधारी लोगों को यथेष्ट सजा भोगनी पड़ती है। साधारण भाव से भोग करना अच्छा - साधु सजकर जो भोगों का त्याग करने में असमर्थ हैं वे वमन - भोजी हैं।

(३९७) साधु, ब्रह्मचारी, सिद्ध पुरुष जो कोई भी क्यों न हो उनका कर्तव्य है कि माता, भगिनी, कन्या, शिष्या, गुरुपत्नी, साधिका, सिद्धा नारी जो कोई भी हो चाहे जो भी सम्बन्ध रहता हो तथापि कभी भी कहीं भी निर्जन स्थान में उसके साथ अवस्थान नहीं करना। इस शास्त्रवाणी की मर्यादा न मानने वाला पुरुष को लांछित होना ही पड़ेगा, होगा ही।

(३९८) ब्रह्मचारी का त्रैकालिक स्नान करना कर्तव्य है। जपादि के लिये स्वतंत्र कोठरी रखनी चाहिये, त्रैकालिक देवपूजा करनी होती है। यदि संभव हो तब एक सौ आठ बेल पत्रों के द्वारा नित्यहोम करना उचित।

(३९९) शुद्ध, लघु, सात्विक आहार दिवा रात्रि में दो बार करना चाहिये। गीता, चण्डी, श्रीमद् भागवत, रामायण प्रभृति स्वाध्याय करना कर्तव्य। नामकीर्तन, अजपा - जप, गायत्री, इष्टमंत्र-जप नियमित करना होता है।

(४००) लोक संग, स्त्रीसंग का त्याग जो ब्रह्मचारी नहीं कर सकता उनको इष्ट लाभ होना सुदूरस्थ वस्तु है।

(४०१) सर्वदा जप करना उचित, इस विषय में दृढ़ संकल्प होना ब्रह्मचारी के लिये अवश्य कर्तव्य है। जिह्वा क्षण मात्र के लिये भी नाम छोड़कर न रहे। इसके पश्चात् भगवान की कृपादृष्टि उसके ऊपर पतित होती है।

(४०२) जो सर्प की भाँति जनसंग से भीत होते हैं मिष्टान्न को विष की भाँति समझते हैं स्त्रियों को राक्षसी समझ कर भयभीत हो दूर रहते हैं वे विद्या लाभ कर पाते हैं। नारी गण को पुरुषों को राक्षस मानकर उनसे दूर में अवस्थान करना उचित।

(४०३) नाम कीर्तन में अबाध मिलन से यदि कीर्तनकारी सावधान नही हो तो उनका पतन होना अनिवार्य।

(४०४) साधु पथ में जो पुरुष या जो रमणी चलना चाहते हैं उनके लिये सर्वतोभाव से नारी अथवा पुरुष संग त्याग अवश्य कर्तव्य है। जो इस विषय में उदासीन होते हैं उनको इसके लिये दण्ड भोगना पड़ेगा, पड़ेगा।

(४०५) केवल साधु ही नही – स्त्री पुरुष मात्र के लिये संयमी, मिताहारी, धर्म परायण, भगवद् विश्वासी होना प्रयोजनीय है।

इसीसे आत्मकल्याण लाभ होता है।

(४०६) जो लोग आत्मकल्याण चाहते हैं उनके लिये स्त्री शून्य निर्जन स्थान में रहकर साधन - भजन करना कर्तव्य है।

(४०७) पुरुष से स्त्री और स्त्री से पुरुष यदि दूर न रहे तो वे विपन्न होते हैं यह मैं केवल शास्त्रों को पढ़कर ही नही बतला रहा हूँ - मेरे दीर्घ जीवन में मैने बहुत प्रत्यक्ष किया है, सत्संग करने जाकर भी अधः पतन होता है।

(४०८) साधुगणों का स्त्री सम्बन्ध में बहुत सावधान रहना कर्तव्य है वरना उन्नति पथ में उठना कठिन। साधुगण बोलते हैं - काजल की कोठरी में वास करने से कुछ न कुछ तो कालिख लगेगी ही। उसी प्रकार स्त्री संग में भी चित्त में कुछ न कुछ तो दाग लगेगा ही, जो लोग वास्तविक आनन्द के प्रार्थी है उनका अवश्य कर्तव्य होता है - कायमनो - वाक्य से स्त्री संग त्याग।

(४०९) भगवान का आदेश - आत्मज्ञ पुरुष - स्त्री और स्त्री संगी पुरुषों का त्याग कर निर्जन स्थान में अनालस्य भाव से मेरा चिन्तन करे।

(४१०) विरक्त पुरुष काष्ठ की युवती को भी पैरों से भी स्पर्श करेगा नही।

(४११) शास्त्र बोलते हैं- नारी सरसा होने पर भी निरसा है - दूर रह कर भी ज्वाला प्रदान करती है इसीलिये दृष्टि - विष - स्वरुपिणी नारी को दूर से ही परित्याग करे।

(४१२) स्वयं वृद्ध होने पर भी वृद्धा स्त्री का भी विश्वास न करे। क्योंकि जीर्ण कंथा पर जीर्ण वस्त्र की ही टल्ली लगती है।

(४१३) "द्वारं किमेकं नरकस्य नारी" - नरक का एकमात्र द्वार कौन है ? - नारी।

(४१४) सुरा के समान पुरुष को कौन सम्मोहित करती है ? - नारी।

(४१५) प्राणवन्तगणों के लिये नारी ही एकमात्र बंधन की श्रृंखल है।

(४१६) माता होवे, भगिनी हो, कन्या हो - निर्जन में इनके साथ अवस्थान नही करे, बलवान इन्द्रिय सकल, विद्वानगण को भी आकर्षित कर लेती है।

(४१७) जिस साधु को नारी संग अच्छा लगता है उसका अधःपतन अनिवार्य है। उसकी

कोई रक्षा नही कर सकता, नही कर सकता ।

(४१८) विरक्त वेश धारण करके भी जो साधु नारी - संग - प्रिय होता है उस वमन भोजी साधु का मुख दर्शन से भी पाप होता है ।

(४१९) शिक्षा या उपदेश देने के बहाने से भी नारी - संग नही करें । छोटा साँप भी साँप है, बड़ा साँप भी साँप है । बालिका, युवती, किसी का भी संग न करे, करने से जल मरोगे ।

(४२०) जब तक श्री भगवान आदेश न करैं तब तक स्त्रीगण को शिक्षा देने न जाये ।

(४२१) युवती शिष्या को लेकर किसी भी छल से निभृत स्थान पर अवस्थान न करे ।

(४२२) स्त्रीगण के साथ पथ घाट पर चलेगा नही, अथवा तीर्थ भ्रमणादि करना नही, यदि बचना चाहते हो तो अविराम राम राम करो ।

(४२३) साधु ! तुम जानते हो कि नारीगण ही संसार रक्षिणी महामाया है । उनके साथ आलाप परिचय करने पर अधःपतन

अनिवार्य, सजे हुये साधु को सजा भी अधिक है। साधु का वेश धर इस जन्म में विड़म्बना भोग करोगे, जन्म जन्मान्तर तक रोकर भटकना होगा।

(४२४) सूर्य और अग्नि का ताप तुम्हारी देह को लगता है बरफ या जल की शीतलता का बोध तुम्हारा गया नही, तब किस साहस से, किस छल से नारी देह का स्पर्श करने जाते हो ? सावधान ! सावधान ! सावधान !

(४२५) ब्राह्म मुहूर्त में शय्या त्याग करके मस्तक में श्री गुरुदेव का और हृदय में इष्ट देव का ध्यान करके मानसोपचार पूजा करे, फिर पृथ्वी को प्रणाम करके शौचादि जावे।

(४२६) समर्थ हो तो तीन बार स्नान करे, नही तो मध्यान्ह में स्नान करे और सबेरे और सन्ध्या समय भीगे अंगोछे से अच्छी तरह शरीर को पोंछ लेवे।

(४२७) ब्राह्मण नित्य यथाकाल सन्ध्या करके पूजा-पाठ जप, ध्यानादि करेगा, अन्यवर्ण पाठ, जप, ध्यान करेगा। आसन शुद्धि करनी चाहिये। (गुरुगीता में है)

(४२८) श्रीगीता, श्रीविष्णुसहस्रनाम, श्री चण्डी, श्री महारसायन, श्री नामामृतलहरी, श्री अभयवाणी, सुधा की धारा प्रभृति का नित्य नियमित स्वाध्याय करे, समर्थ हो तो श्रीमद् भागवत, श्री रामायण प्रभृति पाठ करे ।

(४२९) त्रैकालिक पूजा करेगा । समर्थ हो तो ब्राह्म मुहूर्त में, मध्यान्ह में, सन्ध्या समय, एवं मध्यरात्रि में जप ध्यान आदि करे ।

(४३०) ध्यान, लीलाचिन्तन, इष्ट का ध्यान, गुरु-देव का ध्यान जो लोग नाद (अनाहत) पाये हैं वे नाद का ध्यान करें ।

(४३१) साध्यानुसार गृहस्थ के घर में प्रवेश न करे ।

(४३२) सात्विक आहार करे । रसना यदि कटु तिक्त आदि रस चाहे तो उसे अल्प अल्प ये रस देकर वश में करना चाहिये । दिन रात में केवल दो बार आहार करने से उपवास का फल होता है ।

(४३३) मीठे रस विष की भाँति त्याज्य ।

(४३४) वैश्वदेव बलि देवे, जो भी भोजन करे, निवेदन की प्रणाली श्री वैष्णवमताब्ज भास्कर (नामक पुस्तक) में है । एकादशी का उपवास करने में असमर्थ हो तो एक बार फल और जल ग्रहण करे । जन्माष्टमी प्रभृति करना चाहिये ।

(४३५) दिन में निद्रा न ले । सद् ग्रंथ पाठ और सत्संग करे ।

(४३६) यथाकाल उपासना के प्रति विशेष ध्यान रखना चाहिये । नियमित तीन बार प्रार्थना करे । सर्वदा प्रार्थना करके श्री भगवान के साथ बातचीत करने का अभ्यास करना चाहिये ।

(४३७) स्त्रीलोगों से दूर रहे । उनके मुख की ओर देख कर बातचीत न करे । – दृष्टि चरणों पर रक्खे किसी भी स्त्रीलोग के साथ निर्जन में आलाप न करे, स्पर्श न करे । स्त्रीमात्र ही जगन्माता है । – ऐसे बोध से प्रणाम करने का अभ्यास करे । काष्ठ की नारी मूर्ति को पैरों से भी स्पर्श न करे ।

(४३८) सर्वदा कर्म करने में व्यस्त रहे। काम - क्रोधादि का वेग उपस्थित होने पर उच्चस्वर से नाम करे - जब तक वह वेग शान्त न हो जाय तब तक नाम करते रहे। नाम के बिना क्षण काल भी न रहें।

(४३९) कुसंग न करे। नाटक, उपन्यास, कुग्रंथ न पढ़े।

(४४०) 'सकल ही श्री भगवान की देह'- इस बोध से प्रणाम करने का अभ्यास करे। किसी को कठोर वचन न कहे। प्रसन्न वदन से मीठी बात बोले।

(४४१) काम, क्रोध, लोभ - तीन नरक के उन्मुक्त द्वार। इनके सम्बन्ध में सतत सावधान रहे। वाक् - संयम करे।

(४४२) भगवान हैं, दर्शन देते हैं - यह विश्वास स्थिर रखकर दर्शनों की आकांक्षा लाभ करने के लिये भगवच्चरणों में प्रार्थना करता रहे।

(४४३) अमानी होओ। मैं बड़ा, मैं विद्वान हूँ, मैं गुणवान हूँ - यह भाव किसी भी प्रकार से हृदय में स्थान न दे।

(४४४) मैं आपका शरणागत हूँ – यह मंत्र जप करेगा ।

ब्रह्मचारी

(४४५) तुम पढ़ाई लिखाई में मन लगाओ, नाटक, उपन्यास नही पढ़ना, दुष्ट बालकों के संग बालिका युवतियों का संग न करना ।

(४४६) नारीगणों से हास – परिहास या गप शप नही करना । सावधान ! कोई दुष्ट अभ्यास नही करना ।

(४४७) नारीगणों से दूर ही रहना । विद्यार्थीगणों के लिये अध्ययन ही तपस्या है ।

(४४८) माताओं के चरणों की ओर दृष्टि रखते हुये बात करने का अभ्यास करो । नारी मण्डली में कभी भी कहीं भी न जाये ।

(४४९) सात्विक द्रव्य की आहार करे, चाय, बीड़ी, सिगरेट, तमाखू, मछली, मांस, प्याज, अंडा, मुरगी, नही खाना । खूब पेट भर न खाये । मिताहार करे । जहाँ तहाँ, जब कभी, जिस किसी के हाथ से जो कुछ भी हो नही खाना ।

(४५०) तुम्हारा दुरंत यौवन-काल आ रहा है। यदि तुम अभी ब्रह्मचर्य और संयम का अभ्यास नहीं करोगे तो यौवन जलतरंग में बह जाओगे, भोग अधिक दिन नहीं कर सकोगे, चिर-रोगी होकर हाहाकार करना पड़ेगा।

(४५१) स्वास्थ्य का मूल कारण है ब्रह्मचर्य। वह यदि ब्रह्मचर्य पालन नहीं करेगा वैसा होने पर क्या शरीर क्या विद्या, क्या धर्म! कोई भी सुखकर नहीं होगा आजन्म रोना पड़ेगा।

(४५२) पिता-माता, गुरुजनों के वश में रहना, नित्य तीन बार उनको प्रणाम करे। पिता-माता प्रभृति और गुरुजनों की पद-धूलि आयु की वृद्धि करती है। शरीर स्वस्थ रखता है, बुद्धि बढ़ती है। साधुगण का सम्मान करेगा।

(४५३) मनुष्य आया है ईश्वर दर्शन करने के लिये बाल्यकाल से ही सबेरे और सन्ध्या समय जप करेगा, ब्राह्मण बालक का अवश्य कर्तव्य है कि नित्य त्रिसन्ध्या करना और सहस्र गायत्री का जप करना।

(४५४) तुम जगत्‌जयी हो जाओगे यदि सर्वदा मुख में राम राम रख सको ।

(४५५) खेलकूद में वृथा समय नष्ट न करे, जो समय चला जाता है वह फिर लौट कर नही आता है । लघु शंका करने के बाद जल लेना चाहिये, पैर धोने चाहिये । शौच के बाद कपड़े बदल लेने चाहिये ।

(४५६) सिनेमा, थियेटर, जात्रा (नौटंकी) गाना–बजाना छात्रों के लिये विष की भाँति त्याज्य है ।

(४५७) अहेरिव गणाद्भीतो मिष्टान्नाच्च विषादिव ।

राक्षसीभ्यः इव स्त्रीभ्यः स विद्यामधि - गच्छति ॥

जो सर्प की भाँति जनसंग से डरता है मिठाई को विष की भाँति त्याग देता है राक्षसी की भाँति स्त्री को समझ कर उनसे दूर रहता है, वह विद्यालाभ में समर्थ होता है ।

(४५८) सर्वदा सत्य बात बोलो । – कायमनो वाक्य से मिथ्याचरण नहीं करो ।

(४५९) परिश्रमी होओ, सतत कर्म करने में व्यस्त रहो, आलसी व्यक्ति का दुःख नित्य सहचर होता है।

(४६०) ब्रह्मचर्य का पालन अर्थात वीर्य धारण बिना मनुष्य प्रकृत मनुष्यत्व प्राप्त नहीं कर सकता। प्याज प्रभृति और शास्त्र विरुद्ध उग्रतेजस्कर आहार, आदिरसात्मक नाटक, उपन्यास आदि कुग्रंथ पाठ से तथा शौचादि का पालन न करने से मन भगवन्मुखी नहीं हो सकता। मन में नारी सम्बन्धी विचार आते हैं।

(४६१) चित्त नदी दोनों दिशाओं में बह रही है। पाप की ओर भी बह रही है और कल्याण की ओर भी बह रही है। यदि उसे कल्याण के पथ पर नहीं चलाया तो वह अवश्य ही पाप-पथ पर चल पड़ेगी, स्थिर भाव से वह रहेगी नहीं, नारी-संगी और नारी-चिन्तन करनेवाले ब्रह्मचर्य नहीं रख सकते। ब्रह्मचर्य हीन व्यक्ति के मन में सामर्थ्य नहीं रहती।

शास्त्र धर्म और सदाचार

(४६२) चतुर्वर्ण एवं संकीर्ण जाति एवं स्त्री गण किस उपाय का अवलम्बन करके, किस

पथ पर चलकर परमात्मा लाभ करके कृतार्थ होंगे। मनु आदि द्वारा प्रणीत धर्म शास्त्रों में उसका निर्देश किया गया हैं। इस सुरक्षित राजपथ द्वारा जो भी व्यक्ति गमन करेगा वह अवश्य ही शान्ति लाभ करने में सक्षम होगा।

(४६३) शास्त्रों का मूल लक्ष्य है निवृत्ति। निवृत्ति मूलक व्याख्या ही प्रकृत सद् व्याख्या है। ऐहिक भोग-सुख लाभ पुरुषार्थ - यह विकृत व्याख्या है।

(४६४) प्रवृत्तिपथयात्रीगण याग यज्ञादि द्वारा स्वर्ग लाभ करके फिर मर्त्य भूमि में आयेंगे, पुनः स्वर्ग गमन करेगा। इसी प्रकार कर्म करते करते सत्व आधिक्य से निवृत्ति-पथ अवलम्बन करेंगे। निवृत्ति-पथ अवलम्बन करने वाले लोगों की व्यवस्था होती है, प्रथमतः वर्ण-आश्रमोचित क्रिया करके चित्त शुद्ध होने से आत्मज्ञान प्राप्ति के लिये सद् गुरु आश्रय करेंगे।

(४६५) मनुष्य जगत में आता है उनको जानने के लिये, यदि इस उद्देश्य का लक्ष्य न रहे, केवल भोग के लिये प्राण व्याकुल हों तो पशु एवं स्थावर आदि योनि अनिवार्य

है। भोगों का त्याग किये बिना उन्हें जानने का द्वितीय पथ नही है ।

(४६६) सभी के प्राणों के प्राण, मन के मन, चक्षु के चक्षु एक जन पुरुष हैं उन्हें जितने दिन तक नही जाना जाता है उतने दिन ज्वाला, यंत्रणा दुःख भोग करना होगा, जरा-मरण से मोक्ष के लिये एकमात्र उन्ही का आश्रय ग्रहण करना होता है ।

(४६७) जगत में जो कुछ है सभी की उत्पत्ति वर्धन, और नाश अनिवार्य है । सत्व-रज-तम त्रिगुणमयी मेरी माँ नित्य परिवर्तनशीला। अपरिवर्तनीय कहा जाता है एक मात्र ब्रह्म ही - वे ही सर्वदा एकरुप ।

(४६८) शास्त्र अज्ञात ज्ञापक - शास्त्र भूमा आनन्द का संधान दान करते हैं। केवल संधान ही देकर निश्चिन्त नही रहते; किस प्रकार जीव उस भूमा आनन्द को लाभ करने में समर्थ होता है शास्त्र ने इसका राजपथ निर्देश कर दिया है। कैसा आचार-व्यवहार, रीति-नीति अवलम्बन करके परमानन्द लाभ कर कृतार्थ हुआ जा

सकता है शास्त्र ने विस्तृत रुप में वर्णन किया है ।

(४६९) शास्त्रोक्त मार्ग अनुगमन करने वाले व्यक्ति शान्ति लाभ करेगा ही – इस सम्बन्ध में कोई संशय नही ।

(४७०) युग के माहात्म्य से आज शास्त्राचार उपेक्षित हुआ है । उसी शास्त्राचार उपेक्षा के फलस्वरुप संसार हाहाकार से पूर्ण । जो परमानन्द पिपासु हैं उनको एकान्त भाव से शास्त्रों का आश्रय करना ही कर्तव्य ।

(४७१) हमारा शास्त्र इस बहु पथ के देश में पंथ-पादप हैं । हमारा शास्त्र इस संसार मरुभूमि में अमृत का झरना है हमारा शास्त्र इस घोर अंधकाराच्छन्न अमावस्या रजनी में त्याग रुपी शरद का शशधर है ।

(४७२) जो लोग शास्त्र को जितना धीर भाव से अवलम्बन करते हैं वे उतने ही शीघ्र मूल केन्द्र में उपनीत हो सकते हैं । जितने दिनों तक मनुष्य अपने लक्ष्य तक नही पहुँच सके उतने दिन तक वह केवल यंत्रणा ही भोगता है । शास्त्र अवलम्बन करने से

सहज ही दुःखों के हाथ से छुटकारा पा जाता है ।

(४७३) शास्त्र को कोटि प्रणाम करता हूँ । शास्त्र आर्य संतानगणों को ज्ञान-विज्ञान दाता है । धर्म-अर्थ-काम, मोक्ष शास्त्र सेवी शास्त्रोक्त क्रियावान पण्डित अनायास ही लाभ करने में समर्थ होता है ।

(४७४) आहार, निद्रा, भय, मैथुन पशु एवं मनुष्यों में समान है । आहार, निद्रा, भय एवं स्त्री संग पशु भी करता है, मनुष्य भी करता है । तब इनमें कौन पशु है और कौन मनुष्य ? यह कैसे पहिचाना जाय ? - धर्म के द्वारा; मनुष्य धर्मानुष्ठान करता है, पशु वह नहीं करता है । धर्म हीन मानव सीगं पुँछ नही होने पर भी वह पशु के समान ही है ।

(४७५) वह धर्म क्या है ? "को नामासौ धर्मः ध्रियते येन से धर्मः" जिन्होंने इस विराट विश्व को धारणा किया है वे ही धर्म हैं ।

(४७६) धर्म क्या है ? "भूत दया", प्राणीमात्र पर दया करना ही धर्म है । धर्म का अन्य लक्षण है - "यतोअभ्युदयो निःश्रेयस

सिद्धिः स धर्मः" जिससे जगत की सम्यक् उन्नति एवं परम पुरुषार्थ मोक्ष लाभ होता है वही धर्म ।

(४७७) धर्महीन मनुष्य की निश्चय ही आयु विनाश होती है । अपयश निन्दा विशेष भाव से वर्धित होती है । भाग्यक्षय एवं दुर्गति लाभ करता है । उसके पूर्व पितृगण स्वर्ग से च्युत होते हैं ।

(४७८) मनुष्य के किये हुये पाप-पुण्य समस्त सूर्य मण्डल में सुरक्षित रहते हैं, भगवान यथाकाल जीवगण को उसको प्रदान करते हैं ।

(४७९) उपस्थित कलि का प्रचण्ड ताण्डव चल रहा है । प्रायः सकल शास्त्र के विपरीत-पथ पर चलकर दुःख भोग कर रहे हैं । इस प्रकार होगा, त्रिकालज्ञ ऋषिगण यह शास्त्रों में लिपिबद्ध करके गये हैं ।

(४८०) जो लोग शास्त्र पथ का परित्याग-पूर्वक स्वेच्छाचारी होते हैं उन्हें रोगों पर रोग, दुःखो पर दुःख प्राप्त होते हैं ।

(४८१) अंग्रेजी शिक्षा के प्रभाव से सदाचार, श्रद्धा, विश्वास सब नष्ट होता जा रहा

है। भारत माता की सन्तानगण तीन चार पीढ़ी में अपना वैशिष्टय खोकर कैसे विकृत रुप हो गये हैं।

(४८२) भारत के इतिहास के हर पन्ने को अनुसंधान करने पर देखा जाता है कि जब भी असुर प्रबल हुये हैं तभी शास्त्र, ब्राह्मण एवं गोमाता के ऊपर सर्व प्रथम अत्याचार करना आरंभ किया है एवं जब ये ही अत्याचार प्रबल हुआ है तभी ठाकुर जी ने आकर उनके प्रिय वर्णाश्रम धर्म की पुनः प्रतिष्ठा की है।

(४८३) वर्तमान में क्षीणकण्ठ दूध खाने वाले स्कूल के छात्र भी ब्राह्मणगण के अत्याचार से क्षुब्ध होकर बड़े बड़े निबन्ध लिख रहे हैं, अस्पृश्यता वर्जन करने के लिये बद्ध परिकर हो रहे है एवं गौरव पूर्वक घोषणा कर रहे हैं कि मैं मेहतर के साथ खा सकता हूँ।

(४८४) आर्य वैदिक ऋषियों की सन्तानों का क्या और कोई वैशिष्टय नही ? सब कोई भोजन कर सकते हैं किन्तु यथेच्छ भोजन नही करेगा, यह बात कहना व न करना; यह भोजन करने की अपेक्षा बहुत

कठिन है, इस बात को क्या ये उदर भरण करने वाले अस्वीकार कर सकते हैं ?

(४८५) हरि ! हरि ! यथेच्छ भोजन तो श्रगाल, शूकर, कूकर भी करते हैं। पेटू लोगों के लिये चाहे जिसके हाथ का, हर किसी के संग खा सकना बड़े आनन्द की बात हो सकती है। – किन्तु इतने बड़े संसार में क्या यह उदरभरण ही सबसे महत्वपूर्ण है ?

(४८६) स्कूल में हीनवर्ण के बालकों के साथ एकत्र बैठना, अध्ययन, भोजन, पान, बाल्यकाल से ही होता रहता है। शौच और सदाचार के अभाव में असुरभाव बाल्यकाल से ही बद्धमूल होने लगता है। मलमूत्र त्याग करने पर भी किसी प्रकार का शौच आवश्यक है यह बात तक आजकल के स्कूल कालेज के छात्र नही जानते।

(४८७) शौच सदाचार के अभाव में श्रद्धा, विश्वास नष्ट हो जाते हैं ऐहिक भोग से अतिरिक्त और कुछ है इस बात का विश्वास नही कर सकते; जीवन्मुक्ति, योगमुक्ति, ईश्वर और अभ्रान्त शास्त्र

वाक्यों पर विश्वास नही रख पाते, जो कुछ भी करते है अपना ही मनमाना ।

(४८८) सामान्य व्यवहार बुद्धि शून्य- दुर्बुद्धि पिता अर्थ के लिये धर्मशून्य शिक्षा से पुत्र को शिक्षित करके पिता के कर्तव्य की इतिश्री कर लेते हैं । शौच, सदाचार, सन्ध्या, उपासना ये ब्राह्मण के आवश्यक कर्तव्य हैं । इन्हें विस्मृत होकर सन्ध्यान्हिक नही करते हैं । पुत्र नही करता है और भ्रान्त पिता भी उसके लिये कोई चेष्टा नही करता है ।

(४८९) पथभ्रान्तगण जब तक शास्त्र-पथ का अवलम्बन नही करेंगे तब तक शान्ति लाभ करने में समर्थ नही हो सकते, शास्त्र ही शान्ति का अनन्त प्रस्रवण ।

(४९०) आओ भ्रातृगण आओ पुत्रगण, तुम लोग लौट आओ, तुम्हारे शान्ति राज्य में, भोग मदिरा पान से उन्मत्त होकर तुम बहुत ज्वाला भोग कर रहे हो । लौटो, लौट आओ तुम्हारे संयम में, तुम्हारे त्याग में, तुम्हारी उपासना में, तुम्हारी तपस्या में ।

(४९१) आज रोग, शोक, ज्वाला, यंत्रणा में, अभाव में नर नारीकुल हाहाकार कर रहे हैं। इस हाहाकार को दूर करने की शक्ति किसी में नहीं हैं। शास्त्रों की अवमानना के फल स्वरुप यह अग्नि जल उठी है।

(४९२) शास्त्र-विश्वास करो, यथाकाल, यथासमय उपासना करो। पिता-माता एवं अन्यान्य गुरुजनों की भक्ति करो। शुद्धाहारी, सदाचारी बनो, देख सकोगे कि अनन्त आनन्द का झरना तुम्हारे हृदय में ही छिपा हुआ है।

(४९३) ओरे, शास्त्र का बन्धन बन्धन नही है। वह मोहमुक्ति की विजय का नगाड़ा है। बाँधों, शास्त्रों के बन्धन से अपने आप को बाँध डालो, जैसे जैसे बाँध सकने में समर्थ होओगे वैसे वैसे आनन्द लाभ करोगे, करोगे ही। यह सुनी सुनायी बात नही, यह पढ़ी-पढ़ाई बात भी नही है, यह दीर्घ जीवन का अनुभूत महासत्य है।

(४९४) वे जो भोगलोलुप जनगण, शास्त्रों पर कटाक्ष करके कितनी बातें कह रहे हैं।

हाय ! जानते नही जानते नही वे भ्रान्तगण जानते नही कि वे कैसा विषपान कर रहे हैं, इसकी ज्वाला कितनी । जलोगे, दिन रात जलोगे ।

(४९५) इसी कारण पुकारता हूँ, आओ मेरे प्रिय आर्य नर नारीगण, लौट आओ तुम्हारे धर्म में तुम्हारे कर्म में तुम्हारी साधना में लौट आओ । शास्त्र का सम्मान करो ।

(४९६) उठते, बैठते, खाते, सोते वे पशुधर्मी आचरण करने वाले शास्त्रों की अवमानना करने वालेगण सतत जलेंगे ये तो जलेंगे, इनके पौत्रादिगण पर्यन्त जलेंगे, इनकी दारुण यंत्रणा तुम सब देखोगे ।

(४९७) भारत का कल्याणप्रार्थी सभी नवीन प्रवीण सब कोई को सादर आहवान करता हूँ । आओ शास्त्रपथ का अवलम्बन करो –शुभ होगा, तुम्हारा जो उद्देश्य ग्रहण किया है, वह भी सिद्ध होगा, शास्त्रों का परित्याग कर कुछ करने से, नूतन शास्त्र बनाने से तुम्हारी किसी भी काल में आशा सफल नही होगी ।

(४९८) आओ माताओं लौट आओ तुम्हारे पुरातन गृह कर्म में, तुम्हारे पुरातन मोटे

कपड़ों में, शंखे सिन्दूर में, पुरातन भावों में, गुरुजन सेवा में, स्वामी भक्ति में, अतिथि-सेवा में, देव-पूजा में, सन्तान-वात्सल्य में, लौट आओ देवि, बड़ी शान्ति इसके अंदर में अवस्थान करती है। इस महाशान्ति को त्यागकर नवीनता के प्रलोभन में - नवीन शिक्षा की ओर मत जाओ, मत जाओ।

(४९९) ज्वाला ! ज्वाला ! उस पथ में केवल ज्वाला है। भारत रमणी सतीरानी तुम्हारे लिये वह मार्ग नही है। देखो मत, उस पथ की ओर देखो भी मत। आँखें झुलस जायेंगी, सिर चकरा जायेगा। अंत में हाहाकार करने के अतिरिक्त और कोई उपाय नही रहेगा।

(५००) हे लोकपूज्य ब्राह्मणगण ! जगत को ज्ञान प्रदान करने के लिये आप लोगों का आविर्भाव हुआ है। आप लोग अपने सत्य से, सदाचार से त्याग से और तपस्या से पुनः दीप्तिमान हों।

(५०१) मेरा शास्त्र ! तुम्हारे स्तव की भाषा नही जानता, तब भी आज मैं मुक्तकण्ठ से बोल रहा हूँ कि मैं तुमको बहुत प्रेम करता हूँ। तुम्हारी सभी आज्ञाओं का पालन

करने का भाग्य लाभ नही किया, जितनी आज्ञाओं का पालन किया है उससे कृतार्थ हुआ हूँ आनन्द सागर में डूब गया हूँ। प्रतिज्ञा की है आमरण जब तक जिह्वा एक भी शब्द का उच्चारण कर पायेगी तब तक घोषणा करूँगा - शास्त्र सत्य; शास्त्र अभ्रान्त; जो भी शास्त्रों का आश्रय ग्रहण करेगा, श्री भगवान उसको वक्ष से ग्रहण करेंगे।

(५०२) आज घर घर में अनुसन्धान करो, असंयमी युवक युवतियाँ किस भाव से असंयम का फल भोग कर रहे हैं व्याधिहीन रमणी दुर्लभ हो गई है।

(५०३) असंयमी की वर्तमान अवस्था एक बार जिज्ञासा करके देखिये ? अपने में सामर्थ्य नही है, स्वयं सदाचार, संयम का पालन नही कर सकते। शास्त्र की निन्दा करते है, क्यों ? शास्त्रों ने आपका क्या अपराध किया है ? यथाकाल सन्ध्या करने का क्या फल होता है यह कभी परीक्षा करके देखा है ?

(५०४) गंगा स्नान, तुलसी सेवा, शिवलिंग, शालिग्राम पूजा का क्या फल होता है और

सात्विक आहार से मन की शक्ति किस प्रकार वर्धित होती है यह कभी परीक्षा करके देखा है क्या ?

(५०५) सदाचार मल-मूत्रादि त्याग करने पर जल-शौच करना अवश्य कर्तव्य, जो शरीर से निकलता है वह दुष्ट होता है, उसी मल-मूत्र की दूषित वाष्प यदि आपके अंग का भूषण हो आप कैसे स्वस्थ रहेंगे ? कैसे उपासना आदि कर पायेंगे ?

आहार

(५०६) आहार शुद्धि होने पर ध्रुवा स्मृति अर्थात् अव्यभिचारिणी भक्ति लाभ होता है इस भक्ति के लाभ होने पर स्थूल, सूक्ष्म, कारण देह-रुप चित्त-जड़-ग्रंथि चली जाती है ।

(५०७) प्रियतम ब्राह्मण और अब्राह्मणों, आदरणीय माताओ ! तुम लोग तो परमानन्दमय भगवान को ही चाहते हो किन्तु उन्हें कभी नही पा रहे हो ? जानते हो ? केवल तुम लोगों के आहार दोष एवं सदाचार हीनता से, जो लोग मछली, मांस, प्याज, अंडा,

हंस, मुरगी आदि राजस, तामस आहार करते हैं उनकी देह, मन दुष्ट हो जाते हैं आसन पर बैठकर श्री भगवान का नाम लेने, जप करने की सामर्थ्य उनमें नही रहती। देह में उत्तेजना की सृष्टि होती है जिससे शरीर क्षय होता है।

(५०८) शुद्धाहार सदाचार काले उपासन।

एतेई लभीबी प्रिय साक्षात् दर्शन ॥

(५०९) अति कटु (नीम आदि), अति अम्ल, अति लवण, अति उष्ण (चाय), अति तीक्ष्ण (मिर्च आदि), अति रुक्ष (सूखा), अति विदाहकारी (सरसें) दुःख-शोक एवं रोग-प्रद यही सब आहार राजसी लोगों को प्रिय होते हैं। मछली, मांस, प्याज, लहसून, हंस, अंडे की तो बात ही क्या है।

(५१०) यही सब अभक्ष्य, कुभक्ष्य स्वयं खाकर स्त्री-पुत्र आत्मीय स्वजनों को खिलाकर स्वयं को भी विनष्ट करते हो, स्त्री-पुत्रादि को भी मरण की ओर खींचकर ले जाते हो ! असंयम और मरण एक ही बात है। इन सब उत्तेजक वस्तुओं को खाकर कोई संयम नही रख सकता, यदि

शान्ति चाहते हो, श्री भगवान को देखना चाहते हो तो सात्विक आहार करो ।

(५११) शरीर शुद्ध न हो तो मनुष्य को श्री भगवान का अनुभव नही पाता, शुद्ध आहार एवं सतत – हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे । हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ॥ इस नाम को लिये रहने से शरीर शुद्ध हो जाता है। सात्विक द्रव्य-भोजी, सदाचारी अपने अंतर से श्री भगवान की अति सुमधुर पुकार सुन पाते हैं ।

(५१२) इस अन्न के द्वारा ही श्री भगवान के स्थूल शरीर की रक्षा की जाती है। बड़ी सावधानी से, शुद्धाचार से, श्री भगवान को स्मरण करते करते अन्न पाक करना कर्तव्य है ।

(५१३) श्री भगवान को निवेदन करने के पहले ही किसी अन्य व्यक्ति की दृष्टि द्वारा भी अन्न दूषित न हो ।

(५१४) रसोइया और परोसनेवाले यदि रसोई की सीमा के बाहर दूर जाँय तो लौटकर हाथ पैर अादि धोकर रसोई में प्रवेश करें, देव-गृह की भाँति ही अन्नशाला की भी

मर्यादा की रक्षा करनी होती है। पैर बिना धोये वहाँ प्रवेश नही करना चाहिये ।

(५१५) खाना बनाते समय पाचक को बात नही करनी चाहिये, पान अथवा अन्य कुछ उनके मुख में नही रहना चाहिये - पाकशाला में दूसरे वर्ण के लोगों की बात ही क्या, पाचक एवं परिवेशक को छोड़कर कोई दूसरा ब्राह्मण वा ब्राह्मणी भी प्रवेश न करे ।

(५१६) अन्न पक जाने पर निवेदन करके सावधानी एवं संयम के साथ परोसना चाहिये। परिवेशक को मन में ऐसा रखना चाहिये कि वे भगवान की सेवा कर रहे हैं ।

(५१७) उत्सवादि की जगहों पर प्रत्येक अन्न-व्यंजनादि के वर्तनों में पहले तुलसी का पत्ता देकर फिर अन्नादि रखना चाहिये ।

(५१८) देह के उपादानों के दुष्ट हो जाने के कारण आज नर नारी काम, क्रोध, लोभ, मोह, रोग-शोक, दुःख, ज्वाला से पीड़ित हैं ।

(५१९) श्री भगवान का नाम और शुद्ध अन्न के द्वारा भगवत्सेवा करने से उनकी करुणा से समस्त ज्वाला का अवसान होगा ही होगा ।

(५२०) दुष्ट अन्न-भोजन से, उपासनाहीनता से देह के उपादान दुष्ट हो गये हैं, नाम और शुद्ध-अन्न-भोजन से देह के उपादानों में परिवर्तन हो जाने पर वे आत्म दर्शन करने में समर्थ हो जायेंगे ।

(५२१) भोक्ता-हाथ, पैर, मुख धोकर उस शुद्ध अन्न के द्वारा श्री भगवान का शरीर इस देह की सेवा करना । भोक्ता को मन में रखना चाहिये, वे नही खा रहे हैं, भगवान की सेवा कर रहे हैं ।

(५२२) तुम चाहे जो भी जाति के क्यों न हो-अन्नादि पकाकर, उसमें तुलसी देकर 'ठाकुर खाओ' कहकर दरवाजा बन्द करके बाहर खड़े होकर भावना करो कि ठाकुर जी तुम्हारा अन्न भोजन कर रहे हैं तत्पश्चात् जो लोग भोजन करें, उनके लिये आसन बिछा देना, वे लोग हाथ पैर मुँह धोकर, ठाकुर को स्मरण करते करते खायें, यही निवेदन करेगा ।

(५२३) मौन अवलम्बन पूर्वक उनको स्मरण करते करते वैश्वानर रुपी श्री भगवान को आहुति देना। कुछ दिन इसी भाव से अन्न के द्वारा श्री भगवान की सेवा करने पर ज्योतिमर्य आत्मा का दर्शन एवं उनकी पुकार सुन पायेगा। अवश्य ब्राह्मणोचित क्रियाओं का भी इस युग में जितना संभव हो उतना अनुष्ठान करना होगा।

(५२४) माताओं ! यह भोजन नही, यह भगवान की सेवा है, तुम एक बात नही जानती - नर नारियों की देह भगवान के देह है। उनको मांस, मछली, प्याज, अंडा प्रभृति खिला खिला कर उसे विकृत कर डाला है। इसी कारण रोग, शोक, काम, क्रोध आदि की ज्वाला भोग कर रहा है। देह उपादान सब विकृत हो गये हैं।

(५२५) अवस्था अच्छी होने पर भी रसोइया मत रखना - पाचक का स्वभाव तो तुम जानते नही, दुष्ट चरित्र रसोइये के हाथ का खाने से देह मन् दुष्ट हो जाते हैं। काम, क्रोध, लोभ, रोग, शोक भोगना होगा। तुम्हारे जप तप में भी दुष्ट अन्न बाधा देगा। पति नारायण, पुत्र

गोपाल – उनकी सेवा एक पाचक के हाथ क्यों करवायेगा ? स्वयं पकाकर उनकी देहरुपी भगवान की सेवा करना ।

(५२६) तुम उन्ही को भोजन कराती हो, वे खा रहे हैं। तुम अविद्या वश ही उनकी जिहवा को सुखकर मुर्गी–मछली–अंडा इन सब जीवों की हत्या करके उदरपूर्ति कर रही हो । जगत में अहिंसा के समान धर्म और हिंसा के समान अर्धम अन्य नही ।

(५२७) जो द्रव्य का भोजन किया जाता है उसके तीन भाग होते हैं । एक भाग मल मूत्र के रुप में निकल जाता है । – एक भाग से शरीर निर्मित होता है, और एक भाग से मन बनता है । बकरी आदि पशु का मांस खाकर इन्द्रियाँ पशु की इन्द्रियों की भाँति ही अंसयत, विषय प्रवण कामाकुल होती हैं, मन भी उसी सुर में सुर मिलाने लगता है । जगत में जितने पार्थिव सुख हैं उनमें रमण–सुख की भाँति दूसरा सुख नही है, यह मन में सोचकर इन्द्रियाँ उसी सुख के हेतु उन्माद होकर नारीगण के हेतु धर्म, कर्म, इहलोक, परलोक सब भूलकर नारी के साथ रम जाती हैं निरर्थक वीर्यक्षय का निवारण नही कर सकता हैं ।

(५२८) अग्नि में यदि उत्तम घी द्वारा होम किया जाय तो उस होम के धूम की गन्ध मनुष्य के देह, मन को पवित्र करती है। केवल मनुष्य को ही नही – उससे स्थावर – जंगम सब पवित्र होते हैं। और यदि उसी अग्नि में जलायी जाय मुर्गी, मछली, मांस, प्याज, अंडा, तो दुर्गन्ध के कारण वहाँ खड़ा नहीं रहा जा सकता, शरीर अस्वस्थ हो जाता है। वह दुर्गंन्ध चराचर के प्राणियों के देह मन को दूषित कर देती है।

(५२९) इसीलिये श्री भगवान जठराग्नि होकर देह में विराजमान हैं। इस कारण मछली, मांस, मुरगी, प्याज, अंडा आदि की आहुति देने से वे उसी दुष्ट, अपवित्र, दुर्गन्ध, रजोतमोगुणवर्धक विषाक्त आहार को पचाते हैं, समान वायु द्वारा समस्त शरीर का उसी के द्वारा पोषण करते हैं। सारे शरीर में वह विष फैल जाता है और देह के समस्त उपादानों को विषाक्त कर देता है।

(५३०) संयमी राजस भोजन करने वाला व्यक्ति बलवान हो सकता है – उसकी बुद्धि तीक्ष्ण हो, यह भी असंभव नही उसके

द्वारा सुख एवं ऐश्वर्यवर्धक पदार्थों का आविष्कार हो सकता है, किन्तु आध्यात्म्य का द्वार ही बन्द हो जाता है फिर भी कभी किसी महापुरुष में इसके विपरीत भी देखा जाता है, वह एक स्वतन्त्र कथा है।

(५३१) शरीर का सार धातु वीर्य है। वीर्य ही आत्मा है, उसी आत्महत्या को रोकना, यथेच्छभोजन करनेवालों में अनेकों के लिये कठिन हो जाता है। इसके फलस्वरुप देह नाना प्रकार से रोगग्रस्त, अन्तर-सार-शून्य और मन में विषय-उन्माद हो जाता है। मनुष्य शरीर में पशु की भाँति अवस्थान के सिवा अन्य गति नही रहती। यथेच्छ राजस तामस आहार से मनुष्यत्व नष्ट हो जाता है, जीवन का प्रकृत उद्देश्य भूल जाता है।

(५३२) राजस तामस भोजी यदि नाम का आश्रय करते भी हैं तो उनकी कामना भगवत् प्रेम नही; उसमें प्रच्छन्न भाव से रहता है जागतिक-सुख-लाभ धार्मिक ख्याति, यश प्राप्ति। प्रेमी कभी भी हिसां नही कर सकता। मनुष्य संसार में ईश्वर-दर्शन

करने आता है । - यह बात वह भ्रम से भी याद नहीं रख पाता, वो देह नहीं है - आत्मा है, यह समझने की क्षमता उसमें नहीं रहती ।

(५३३) मछली अच्छी लगती है ? मछली क्या खाती है, जानते हो ? वह विष्ठा खाती है, शव खाती है, कफ खाती है। यह सब राक्षसी आहार करने से मन भी राक्षसों जैसा हो जाता है ।

(५३४) इन्द्रियों के द्वारा विषयों को ग्रहण करने का नाम है आहार। प्रथम सात्विक आहार के द्वारा मन देह शुद्ध होने पर देह के उपादान पलट जाने पर तब इन्द्रियगण शब्द, स्पर्श, रुप, रस, गंध-पाँचों विषयों को श्री भगवान बोलकर ग्रहण करने में समर्थ होती हैं ।

(५३५) प्याज, लहसुन, मांस, अंडा, मुर्गी इन सबको आहार करने से मनोवृत्ति पशु के समान हो जाती है ।

(५३६) कुछ दिन सात्विक आहार करो, हविष्य करो । कुछ दिन हविष्य करने पर, देख पाओगे तुम्हारे शरीर के रोग निरामय होने शुरु हो गये हैं ।

(५३७) प्रथम आहार के विषय में सावधान होना होगा । प्रतिज्ञा करके प्याज, अंडा, मछली, मांस, मुर्गी इत्यादि सर्वनाशकारी आहार एकदम त्याग देने होंगे । पुष्टि की चिन्ता नहीं है । दूध, घृत दुर्लभ होने पर भी चीनाबादाम (मूँगफली) सोयाबीन विशेष भाव से शरीर को पुष्ट कर देते हैं । दाल भात की शक्ति भी असीम । चाय, बीड़ी, सिगरेट तो एकदम त्याज्य ।

(५३८) सच्चिदानन्दमय श्रीभगवान को जो लोग चाहते हैं उनका अवश्य कर्तव्य है (१) शुद्ध सात्विक आहार (२) यथाकाल उपासना (सन्ध्या एवं इष्ट मंत्र जप) (३) ब्रह्मचर्य (मन वचन काया द्वारा गुप्तोन्द्रियों का संयम) (४) स्वाध्याय (अपने साधन के अनुकूल सत् शास्त्र पाठ) (५) सत्संग (स्वजातीय स्निग्ध साधुसंग) । इनके द्वारा मनुष्य मात्र कृतार्थ होंगे ही । फिर भी मांस, अंडा, प्याज आदि अभक्ष्य भोजन से देह के उपादान एकदम विकृत हो जाने के कारण उनका यथाशास्त्र प्रायश्चित्त करना होगा ।

(५३९) प्याज, अंडा भोजनकारी ब्राह्मण पहले दिन उपवासी रहकर सिर के बाल मुड़वा कर सन्ध्या को थोड़ा घृत प्राशन करे, अगले दिन प्रातः द्वादश वार्षिक व्रतानुकल्प एक सौ पैंतीस रुपये उत्सर्ग और पचीस रुपये दक्षिणा दान करके यथाशास्त्र होम पूर्वक उपवीत धारण करे। इसके पश्चात् द्वादश ब्राह्मणों को भोजन कराये।

(५४०) प्रायश्चित्त द्वारा शुद्ध होकर नित्य यथाकाल त्रिसन्ध्या एवं हजार गायत्री जप करने पर श्री भगवान दूर नही रहेंगे।

(५४१) अब्राह्मणों एवं माताओं को चान्द्रायण व्रत अथवा संकल्प लेकर गंगा स्नान करने से ही देह शुद्धि हो जायेगी।

(५४२) दरिद्र ब्राह्मण को चान्द्रायण अथवा संकल्प पूर्वक गंगा स्नान करके शुद्ध हो जायेगा लेकिन होम करके यज्ञोपवीत लेना होगा।

(५४३) अनाचारी व्यक्ति यथाशास्त्र प्रायश्चित्त करके नियमित जप करने से अलौकिक शब्द (नाद), स्पर्श, ज्योति, रस, गन्ध

प्रभृति श्री भगवान के अंतरंग संगी आकर उसे श्री भगवान के पास ले जायेंगे ।

(५४४) सबेरे उठने का अभ्यास करना होगा । जो व्यक्ति नित्य सबेरे ब्राह्म मुहूर्त में उठना नही चाहता, उसका पशुत्व खण्डन कोई नही कर सकता ।

(५४५) प्रियतम ! क्या सत्य ही तुम आत्म कल्याण चाहते हो ? मानव देह - धारण को सार्थक करना चाहते हो ? सत्य ही क्या यह इच्छा तुममें जाग्रत हुई है ? तब तुम्हें छः प्रकार के दोषों को त्यागना होगा । अधिक निद्रा, तन्द्रा, सत्कार्य-चरित्र गठन करने के प्रति भय, क्रोध, आलस्य एवं दीर्घसूत्रता अर्थात कार्य के प्रति उत्साहहीनता, एक काम को बहुत काल तक करते जाना - चिरक्रियता अर्थात् करता हूँ, करता हूँ तो इस प्रकार से काम करना ।

(५४६) यदि ब्राह्मण हो तो नित्य त्रिकाल सन्ध्या, हजार गायत्री जप और हर क्षण गुरु, गुरु का जप करना ।

(५४७) वाणी का संयम करना । वाणी के संयम के बिना शांति लाभ नही होती ।

(५४८) यदि मरण जयी होना चाहते हो तो गुरु जनों के आदेश के अनुसार चलने की चेष्टा प्राणप्रण से करना, यदि ऐसा कर सको तो तुम विश्वजयी अवश्य ही होओगे, होगे ही ।

(५४९) तीनों कालों में गुरुजनों एवं देवता को दण्डवत् प्रणाम करने का अभ्यास सात्विक आहार, ब्रह्मचर्य का पालन करो माताओं के चरणों की ओर दृष्टि रखकर, सत्वगुण को बढ़ाने की चेष्टा करो ।

(५५०) पिता माता एवं गुरुजनों के आज्ञाकारी बन कर रहो, जब तक अपनी स्वाधीन इच्छा त्यागने में समर्थ नही होते, तब तक तुम उच्छृंखलता के पथ में मरण की ओर दौड़कर चले आ रहे हो यह निश्चय जानना ।

(५५१) हे आत्मकल्याण के कामी ! उठो जागो–तुम मनुष्य हो पशु नही; उठो जागो । प्राण पन से शास्त्र - पथ पकड़ कर नाम करते करते आगे चलो - तुम्हारा गमन–पथ फूलों से आच्छादित हो । जय गुरु ।

(५५२) आज भारत के नर नारी सदा भीत त्रस्त हैं। इस भय के हाथों से एकमात्र श्री भगवान को छोड़कर कोई त्राण नही दिला सकता।

(५५३) आओ, आओ, संसार ताप से दग्ध बाबाओ, माताओ प्रायश्चित्त के द्वारा, पूर्व दुष्कर्मों का खण्डन करके, शरीर शुद्ध करके, श्री भगवान को पुकारना आरम्भ करो वे दर्शन देंगे, तुम परमानन्द लाभ करोगे, करोगे ही करोगे।

(५५४) श्री भगवान हैं; अब भी मनुष्य उनको देख पाता है - यह बात अति सत्य है, अति महासत्य, अति महा महा सत्य।

(५५५) अरे सम्पर्कशून्य, आश्रय लेकर भी उदासीन बाबाओ ! स्त्री पुत्र-कन्या, उच्चपद, रुपया पैसा लेकर जन्म नही लिया। जब यहाँ से जाओगे तब उन्हें साथ लेकर नही जा सकोगे, मुख में अग्नि देने के समय तुम्हारा पुत्र रुपया पैसा, धन सम्पत्ति तुम्हारे साथ नही देगा, सब यही पड़ा रह जायेगा। इसी कारण पुकार रहा हूँ, आगे आओ भय नही, तुम्हें इष्ट-पूजा में अर्थ-व्यय नही करना पड़ेगा, जो

तुम्हारे प्रियतम हैं वे रुपया-पैसा, धन सम्पत्ति नही चाहते, वे चाहते है केवल तेरा मन ।

(५५६) अरे बाबाओ ! तुम लोगों ने सब प्रकार की ज्वालाओं का शमन करने हेतु पागल की भाँति दौड़कर आकर 'इस' के माध्यम से तुम्हारे जीवन मरण के चिर संगी प्राण प्रियतम का आश्रय लिया था यह देखो तुम लोगों का वही प्राणप्रिय देवता कितने आश्रम, मठ, मन्दिर तैयार करके सभी को आनन्द देने के लिये, अनुक्षण 'आओ' 'आओ' करके तुम्हें बुला रहा है । अनेक अखण्ड नाम मण्डप, बहुत पुस्तकें, और बारह पत्रिकाओं द्वारा, और कलकत्ते के बीच में हर पार्क में, नाम रुप से बुला रहे हैं सुनायी नही पड़ता ? मुख फिरा कर, मुँह पर हाथ रख कर, स्त्री, पुत्र, कन्या को छाती से लगाकर रो रहे हो ? देखो, आँख खोलकर देखो ! तुम्हारा दुःख दूर करने के लिये आयोजन ! यह सब क्या है जानता है ? उनकी

प्रसारित वक्ष है । तुम्हें वक्ष से लगाकर आनन्द के राज्य में ले जाने के हेतु हाथ फैलाकर आहवान कर रहे हैं । जा-दौड़कर जा, कूद जा ।

यथाकाल उपासना

(५५७) उनकी **प्रथम आज्ञा** – 'अहरहः सन्ध्या-मुपासीत' हे द्विजगणों ! तुम लोग नित्य अहरहः सन्ध्या करना, जो लोग सत्य सत्य ही भगवान को चाहते हैं उन्हें यथाकाल सन्ध्या एवं उपासना करना अवश्य कर्तव्य ।

(५५८) जिस प्रकार पिता को मानता हूँ, किन्तु पिता की बात नही सुनता, यह कहने से पिता को मानना नहीं होता । उसी प्रकार भगवान को मानता हूँ किन्तु यथाकाल सन्ध्या नहीं करता यह बात बोलने से भगवान को मानना भी नही होता ।

(५५९) यथाकाल सन्ध्या न करने से प्राण विकृत हो जाते है, आँख खराब हो जाती हैं । दृष्टि शक्ति कम हो जाती है ।

रक्तचाप-वृद्धि हो जाती है, हृदय में 'पैलपिटेशन' वायु वृद्धि उन्माद दृष्टि हीनता प्रभृति रोग जन्म लेते हैं। - केवल यथाकाल सन्ध्या न करने से।

(५६०) 'मन्देहा' नामक साढ़े तीन करोड़ राक्षस सवेरे सन्ध्या समय एवं मध्यान्ह में सूर्य के साथ युद्ध करते हैं। गायत्री द्वारा अभिमंत्रित जल त्रिसन्ध्याकाल में ऊपर की ओर क्षेपण करने से वे शान्त होते हैं। जो लोग यह नहीं करते उन्हें सूर्य हत्या का पाप होता है।

(५६१) ये सूर्य ही प्राण रुप से - चक्षु रुप से देह में अवस्थान करते हैं। यथाकाल सन्ध्या न करने से देह की अस्थियाँ में भूत प्रेत रहते हैं एवं नाड़ियों में पिशाच और राक्षस रहते हैं। वे ज्ञान सूर्य को खा लेते हैं।

(५६२) यथाकाल आहार करने से जैसे ही पित्त रस निकल कर भोजन को पचाकर देह में रस, रक्तादि की वृद्धि करके बलाधान करता है उसी प्रकार यथाकाल सन्ध्या करने से अशान्त मन, काल के प्रभाव से शान्त होता है और बुद्धि रुप में परिणत

होकर आत्मा का स्पर्श कर परमानन्द को प्राप्त होता है। 'मैं' 'मेरा' देहात्मबोध दूर हो जाता है।

(५६३) प्रत्येक कार्य का निर्दिष्ट समय होता है। सन्ध्या उपासना का निर्दिष्ट समय है। सबेरे सूर्योदय से चौबीस मिनिट पहले से चौबीस मिनिट पश्चात् तक प्रातः सन्ध्या का मुख्य काल है; मध्यान्ह में मध्यान्ह सन्ध्या का मुख्य काल है; एवं सूर्यास्त के चौबीस मिनिट पहले से चौबीस मिनिट पश्चात् तक सायं सन्ध्या का मुख्य काल है।

(५६४) मुख्य काल में ही सन्ध्या उपासना करनी होती है। काल अतीत हो जाने पर पाप होता है। उस पाप का क्षय करने हेतु दस बार गायत्री जप करके संन्ध्या करने की बात शास्त्रों में कही हैं।

(५६५) प्रायश्चित्त का अर्थ– "नैतत् पापं पुनः करिष्यामि" मैं यह पाप पुनः नही करुँगा, नित्य काल का अतिक्रम करके सन्ध्या करने का अर्थ है श्री भगवान का उपहास करना।

(५६६) ब्राह्मण आदि तीनों वर्णों को वैदिक सन्ध्या एवं शूद्रोंगणों द्वारा तांत्रिक सन्ध्या अथवा गुरुदत्त उपासना यथाकाल करना अवश्य कर्तव्य ।

(५६७) सवेरे मध्यान्ह में एवं सन्ध्या श्री भगवान हृदय में नित्य आविर्भूत होते हैं इस कारण समस्त नर नारियों का अवश्य कर्तव्य है कि पूर्वकथित तीनों समय के पहले से ही दर्शन की आशा लिये प्रस्तुत रह कर प्रतीक्षा करे । अपेक्षा करते करते उनकी कृपा से प्रत्यक्ष दर्शन होता है ।

(५६८) जो लोग यथाकाल सन्ध्या उपासना नहीं करते हैं उनके द्वारा श्री भगवान की एवं श्री गुरुदेव की उपेक्षा करनी होती है । हृदय का प्रवेश द्वार बंद करके उनको प्रवेश करने नहीं दिया जाता ।

(५६९) प्रियतम पथिक ! क्या तुम सत्य ही शान्ति चाहते हो ? श्री भगवान को चाहते हो ? तब यथाकाल उपासना करो; श्री भगवान की प्रथम आज्ञा का उल्लंघन करके अपराधी मत बनो, यथाकाल सन्ध्या उपासना का फल असीम होता है । करके देखो कितना आनन्द पाओगे ।

(५७०) ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र एवं मातागण सभी का यथाकाल सन्ध्या उपासना करना कर्तव्य है। सन्ध्या न करना एवं उपासना न करना महाअपराध, यथाकाल संन्ध्या न करने से आत्महत्या का पाप लगता है।

(५७१) मिताहार करके जो छः महीने तक सबेरे एवं शाम को नियमित सन्ध्या उपासना करते हैं वे ज्योतिर्मय आत्मा का प्रत्यक्ष करने में समर्थ होते हैं।

(५७२) जीव मात्र का चरम काम्य है मोक्ष अथवा मुक्ति। सभी मुक्ति के हेतु लालायित रहते हैं, - क्या ज्ञानी, योगी, भक्त, सभी मुक्ति के हेतु प्रार्थना करते रहते हैं।

(५७३) श्री भगवान पर सबका अधिकार है। भाषा-भेद रह सकता है वेद मंत्रो पर अधिकार न हो सके किन्तु प्रेम में किसी प्रकार का स्वातन्त्रय नही होता है। प्रेम के द्वारा सभी लोग भगवान को बन्दी कर सकते है।

(५७४) जिनके पूर्वजगण शूद्राचार का पालन करके इहलोक और परलोक में परमानन्द लाभ कर गये हैं आजकल उसी वंश में

उत्पन्न कोई कोई शूद्र वर्ण को हेय समझकर अपना परिचय वैश्य अथवा क्षत्रिय कहकर देते हैं किन्तु शूद्र हेय नही है ।

(५७५) श्री भगवान, जो भक्तों के एकमात्र सम्बल हैं, योगीगण निर्जन में, युगयुगान्तर जिन चरणों का ध्यान करते हैं जिन पवित्र चरणों से पतित पावनी अधमतारिनी सुर तरंगिनी भागीरथी उत्पन्न होकर तीनों लोकों को पवित्र कर रही हैं, शूद्रगण श्री भगवान के उन्ही शिव विरंचि वांछित परम पावन चरण कमलों से उत्पन्न हुये हैं । वे (शूद्र) हेय नही हैं । वे परम पवित्र उनका भी कर्तव्य है कि वे नित्य यथाकाल उपासना करें ।

(५७६) श्री भगवान सभी के अपने जन है, अन्तरतम हैं । इस कारण मानव मात्र का कर्तव्य है यथाकाल उपासना करे । उसके द्वारा उनमें निरन्तर स्मरण करते रहने की सामर्थ्य लाभ होता है ।

(५७७) प्रियतम पथिक ! तुम सर्वदा कृष्ण कृष्ण नाम जप करो और यथाकाल उपासना करो ।

(५७८) वे नित्य तीनों कालों में आते हैं। और आकर यदि देखते हैं कि उनका सेवक अन्य कार्यों में रत है, तो वे लौट जाते हैं। मनुष्य परमानन्दमय श्री भगवान के स्पर्श से वंचित रह जाता है।

(५७९) जो लोग त्रिकाल में परमानन्दमय का स्पर्श लाभ कर पाते हैं वे अति शीघ्र आनन्द राज्य में प्रतिष्ठित हो जाते हैं।

(५८०) तुच्छ देह, गेह स्त्री-पुत्र इत्यादि के मिथ्या सुख दुःख से स्वयं को सुखी अथवा दुःखी न समझ कर चलो - माँ, माँ कहते माँ के आनन्द राज्य में।

दोष-दर्शन-दोष

(५८१) पथिक ! तुम अच्छे बनना चाहते हो, किन्तु अच्छे बन नही पा रहे हो। उसके कारण दुःखी भी होते हो अच्छे न होने का कारण सुनोगे ? तुमने अपने दोष देखना नही सीखा है। जिसप्रकार दूसरों के दोष देख लेते हो उसी प्रकार निपुण भाव से अपने दोष देखना आरम्भ करो तब तुम अच्छे बन जाओगे।

(५८२) बोल रहा हूँ - वास्तविकवादी पथिक ! जानते हो तुम्हारा वास्तविक वाद कितने क्षणों तक का है ? आज ही तुम्हारी अथवा पोष्य जनों की यथार्थता का चिन्ह तक सदा के लिये मिट सकता है। यह जानते हो ? यह कल्पना नही है। इस प्रकार की घटना प्रायः ही देखते हो जो वास्तव क्षण मात्र में किसी अजाने देश में चला जाता है उसे किस प्रकार से वास्तविक कह सकते हो।

(५८३) सावधान ! यदि आत्मकल्याण चाहते हो तो आज से ही प्रतिज्ञापूर्वक दूसरों के दोष देखना त्यागकर, केवल निज दोष देखना आरम्भ करो।

(५८४) कोई तुम्हें दो बात कहे भी तो उसके उत्तर में क्रुद्ध होकर तुम्हारे ही इष्ट रुप उसको दस बात न सुनाकर अपना दोष ही देखो।

(५८५) जिस प्रकार माटी से हंडिया, कलसी, सराई, तैयार होती है, उसी प्रकार भगवान से ही यह जगत तैयार हुआ है। ऐसा कोई भी पदार्थ नहीं है जो भगवान नहीं हो।

(५८६) शास्त्रों में साधुओं से, गुरुमुख से तुम प्रायः ही सुनते रहे हो – तुम्हारे इष्ट देव ठाकुर लीला करने के हेतु बहुरुप धारण किये हैं। यह बात जान सुनकर भी यदि तुम इष्टदेव रुपी दूसरे को आघात पहुँचाओ अथवा उसकी समालोचना करो, तब बोलो, बोलो ओरे पथिक ! बोलो, बोलो ओरे इष्ट द्रोही ! तुम यंत्रणा पाने के अतिरिक्त और क्या आशा कर सकते हो। पर्वत को यदि कोई चपेटाघात करे तो उसके हाथ में चोट कैसे नही लगेगी ? अग्नि में पदाघात करने से पैर क्यों नही जलेगा ?

(५८७) दूसरे के दोष न देखकर – सदा सर्वदा निज दोष देखो – शीघ्र ही तुम अच्छे हो जाओगे, तुम्हारे दोषों ने तो ही तुमको अपने आनन्दमय स्वरुप से दूर रक्खा है।

(५८८) तुम्हारे देह के दोष एक एक करके दूर करो, तुम दोष शून्य होओ। – मन और बहिर्मुख नही होगा अन्तर में अन्तरतम का सान्निध्य लाभ करके, परमानन्द लाभ कर कृतार्थ हो जाओगे।

(५८९) गीता में ठाकुर ने बोला है - "मां नमस्कुरु"। जितना दोषशून्य होओगे - उतना ही नाम लेने में भूल नही होगी। नाम करते करते, प्रणाम करने का अभ्यास करो - अच्छे हो जाओगे, जाओगे ही।

(५९०) जगत में जो कोई भी अच्छे हुये हैं वे आत्मदोषों से शून्य होकर ही हुये हैं।

(५९१) दूसरों के दोष देखो नहीं। समालोचना करो नहीं। "नमस्ते बहुरुपाय" बोलकर प्रणाम करने का अभ्यास करो।

(५९२) पद पद पर दूसरे को दोषी ठहराकर और निज को निर्दोषी समझकर जिस आत्म-तृप्ति का अनुभव करते हो, वह आत्मतृप्ति नही - आत्महत्या !

मन स्थिर करने का उपाय व साधन

(५९३) मन स्थिर नहीं होता, बोलते हो ? मन स्थिर कैसे होगा ? कभी मन को स्थिर करने की चेष्टा की है जो मन स्थिर होगा ?

(५९४) चिर दिन शब्द, स्पर्श, रुप, रस, गन्ध के

पीछे पीछे मन को चाबुक मार मार कर भटका दिया है। यथेच्छ पान-भोजन किया है जिस तिस का संग किया है। कभी कोई आचार विचार नही पालन किया, भगवान को नही पुकारा-इसी कारण मन स्थिर नही होता ।

(५९५) शास्त्र साधन में उत्साह वृद्धि करने के हेतु; लोगों में प्रशंसा लाभ करने के हेतु नही ।

(५९६) संक्षेप में समस्त साधना का सार बोल रहा हूँ । - कानों द्वारा उसके नाम और गुणों का श्रवण, वाक्य द्वारा कीर्तन एवं मन द्वारा मनन, यही है महासाधन ।

(५९७) दो कान पाये हैं, तो श्रवण करो, जब तक सुनने की शक्ति है श्री भगवान की लीला, गुणों का श्रवण करो । परनिन्दा, वृथा वाक्य श्रवण से दोनों कान पीड़ित हो गये हैं। सुनाओ उन्हें सर्वदा श्री भगवान का नाम वे कृतार्थ होंगे, और कोई दूसरी बात सुनने की इच्छा नही रहेगी - विष के समान मालुम होगी ।

(५९८) गूंगे नही हुये, जिहवा पाई है; पर अपवाद से, यथेच्छ भोजन से रसना कलुषित हो गई है। सर्वदा नाम गुण, कीर्तन से इसे शुद्ध करो-रसना शुद्ध हो।

(५९९) मन के द्वारा मनन करो, मनन का अर्थ है - जो सुना है उसकी निर्जन में चिन्ता। कलियुग में लघु उपाय-लीला चिन्ता।

(६००) प्रथम इष्ट का नाम, लीला सुनो, फिर उनका कीर्तन करो, अपने आप ध्यान आयेगा। उसी समय चिन्ता करो अपने इष्ट की जन्म-लीला का।

(६०१) जिनके गुरु निर्दिष्ट इष्ट है, उन्हें उन्ही की लीला के ग्रंथों का श्रवण मनन करना होता है।

(६०२) महासाधन नाम भले ही है किन्तु यह कुछ भी कठिन नही है। यह साधन बालक-बृद्ध, युवक युवती सभी कोई कर सकते हैं इस साधन करने से रोग, शोक, ज्वाला, यंत्रणा नही रहते है। इस साधना में समस्त साधनाओं का सार है।

(६०३) राम भक्त श्री रामायण, कृष्ण भक्त श्रीमद्भागवत; देवी भक्त श्री देवी

भागवत, श्री चण्डी, शिव भक्त लिंगपुराण, शिवपुराण प्रभृति अपने अपने इष्ट की लीलाओं का वर्णन जिनमें है उन्ही ग्रंथों का श्रवण मनन कीर्तन करें, इसके द्वारा अपने इष्ट में एकांतिकी रति उत्पन्न होगी ।

(६०४) अपने अपने इष्ट की लीलाओं के ग्रंथों की सहायता से उनके भक्तगण अपने इष्ट के येही रुप सगुण, निर्गुण विश्वरुप, स्थूल-सूक्ष्म रुप अवगत होकर, लीला का ध्यान करें । इस ध्यान से जब चित्त गलित हो जायेगा उस समय अश्रु, पुलक, कम्प आदि भाव आते है; उससे समाधि होगी ।

(६०५) बहुत से शास्त्रों की आलोचना करने से कोई लाभ नहीं है । गुरु प्रदत्त बीज मन्त्र का अवलम्बन करो, उसी के अनुकूल शास्त्रों का पठन करों ।

(६०६) इष्ट का नाम गुण, लीला कथा जिनमें है । उन्ही सब ग्रंथों को नित्य संगी करो ।

(६०७) मन्त्र चैतन्य होने दो, अनुभूति आने दो, सगुण समाधि होगी । अलौकिक विषय

पंचक उपस्थित होगा – तब अलौकिक शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध इनमें से किसी एक विषय का अवलम्बन कर समाधि लग जायेगी। उसके बाद ज्ञान की बात। बनावटी ज्ञानी के दण्ड भी अनेक हैं। शिव बनो, शिव का साज (ढौंग) मत करो।

(६०८) ईश्वर दर्शन देने के लिए प्रस्तुत हैं। – तुम्हारे हृदय-दर्पण में पारा नहीं है। ईश्वर की मूर्ति वहाँ कैसे देखोगे ?

(६०९) बाबाओं ! तुम ईश्वर की आज्ञा "अहरहः सन्ध्यामूपासीत", "आचार-हीनं न पुनन्ति वेदाः"–"आहार शुद्धौ सत्वशुद्धिः सत्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः"– इत्यादि आज्ञाओं को ही ईश्वर के स्थान पर बैठाकर पालन करने की चेष्टा करो, तुम्हारा भला होगा।

(६१०) सोचकर देखो, जिन्होंने अच्छे कर्म नहीं किये हैं– जो लोग शुभ कर्म, अशुभ कर्म का विचार न करके जो इच्छा वही करते हैं वे ईश्वर को कैसे देख पायेंगे ?

(६११) निराश होओ नहीं, सुनो, मेरी बात सुनो – अब भी होता है। जो लोग भगवान

का आश्रय ग्रहण करते है वे शांतिलाभ करते हैं ।

(६१२) पापी हो, हो भी तापी, हो तो रहो, होवे भी क्यों न तुम्हारे सहस्रों अपराध, तथापि " मैं तुम्हारी शरण में हूँ" ऐसा कहकर आश्रय ग्रहण करो - अवश्य ही श्री भगवान की कृपा लाभ करने में समर्थ होओगे। - होओगे ही, इसमें कोई संशय नही है ।

(६१३) ईश्वर को देखना चाहो तो पवित्र आचार पवित्र आहार, सन्ध्या आन्हिकादि, ईश्वर की आज्ञा का पालन करना होगा, साधू-संग करना होगा, सत्शास्त्रों का पाठन करना होगा, तभी तो ईश्वर को देखने के लिये हृदय-दर्पण निर्मल कर सकोगे ।

(६१४) जो देह के दोषों को दूर करने की आकांक्षा करते हैं उनका प्रथम कर्तव्य, सात्विक आहार एवं नित्य प्रातः काल एवं सन्ध्या समय नियमित उपासना आदि के द्वारा देह और चित्त के दोषों के दूर होने पर, ज्योति रुप आत्मा का दर्शन

करने में समर्थ होओगे, इस सम्बन्ध में कोई संशय नहीं है ।

(६१५) काम, क्रोध, निःश्वास, भय एवं निन्द्रा–देह के पाँच दोष होते हैं । ये दोष पंचक, निःसंकल्प, क्षमा, लघु आहार, अप्रमादता एवं तत्वसेवा द्वारा दूर होते हैं । निःसंकल्प द्वारा काम, क्षमा के द्वारा क्रोध, लघु आहार के द्वारा निःश्वास, मनोयोग के द्वारा भय, एवं तत्व विचार के द्वारा निद्रा पर विजय होती है ।

(६१६) मन्त्र, हठ, लय–जिस किसी योग के द्वारा मनुष्य पूर्वोक्त दोषों का परित्याग कर सकने से ही मुक्ति लाभ करता है । इन दोषों को त्यागने का उपाय योग ।

(६१७) मानव जन्म ही भगवान की श्रेष्ठ सृष्टि है, कारण इस जन्म में ही भगवान सब इन्द्रियों को स्वाधीनता देते हैं, परीक्षा करते हैं कि किसी प्रकार इन्द्रियों की स्वाधीनता का अपव्यय करता है कि नहीं ।

(६१८) यदि इन समस्त इन्द्रियों को यथा नियम संयम में न रखकर अप्रतिहत भाव से

चलने दिया जाय तो भी उनका दुरुपयोग करना होता है, उसका फल भी अवश्यम्भावी।

(६१९) जो लोग जिस इन्द्रिय का अपव्यवहार करेंगे, भगवान अगले जन्म में उन्हें उस इन्द्रिय की स्वाधीनता से वंचित कर देंगे।

(६२०) कायिक पाप (अर्थात देह के द्वारा पाप) करने से भगवान अगले जन्म में देह की स्वाधीनता और नही देते, इस कारण पत्थर, वृक्ष इत्यादि रुप में जन्म होता है।

(६२१) वाचिक पाप करने पर वाक् शक्ति की स्वाधीनता छीन लेते हैं इससे पशु पक्षी इत्यादि के रुप में जन्म होता है।

(६२२) मानसिक पाप करने से मन की स्वाधीनता छीन लेते हैं। तब किसी अन्त्यज जाति के रुप में (अर्थात् संथाल, भील आदि) जन्म होता है।

(६२३) तुम जो कोई भी क्यों न होओ, यदि तुम्हें अभिमान आवेगा, तब कोई निस्तार नही है। वह अभिमान नष्ट होगा ही, "ओफ ! मैं कुछ नही

हूँ, मेरी कोई शक्ति नही है" बोलकर तुम्हें रोना पड़ेगा ही ।

(६२४) सात्विक आहार, सद्ग्रंथ पाठ, ब्रह्मचर्य, सवेरे एवं सन्ध्या नियमित भाव से हृदय-कमल में इष्ट का ध्यान करो तथा मन्त्र लिख लिख कर ध्यान करो, अवश्य ही अनुभव लाभ करोगे ।

(६२५) मनुष्य की समस्त यंत्रणाओं का मूल कारण है पाप। पुण्यतीर्थ, सेवा आदि के द्वारा उस पाप के दूर होने से साधु संग लाभ होता है, धर्म में रुचि होती है । अनन्तर भगवत् कथा सुनने की इच्छा होती रहती है ।

हृदय - कमल

(६२६) तुम लौट कर आओ अपने हृदय में - तुम्हें और कहीं जाना नहीं होगा, जो चाहोगे सब हृदय में ही पाओगे, आदान-प्रदान जो कुछ है सब हृदय में ।

(६२७) श्री भगवान की कथा और नाम में ऐसी शक्ति है कि उनका नाम, गुण सुनने से

वे हृदय में आविर्भूत होकर जो कुछ दुर्वासना, सब दूर कर देते हैं। हृदय को पवित्र करने में ठाकुर के नाम-लीला-गुण जैसे समर्थ है वैसा कुछ नही।

(६२८) गुरु भक्तों ! तुम्हारे इष्ट को - गुरु को हृदय में ही पाओगे, वृथा बाहर खड़े होकर हाहाकार मत करो। हृदय में चलो-तुच्छ तुम्हारा सांसारिक अर्थाभाव, अति तुच्छ काम-क्रोध का पीड़न। आओ तुम हृदय में, अभाव के मध्य; काम क्रोध के मध्य-तुम्हारे नाथ की अपूर्व लीला का अनुभव कर सकोगे।

(६२९) अपने हृदय में ही अपनी साधना के धन सर्वदा अवस्थान कर रहे हैं, तुम केवल "मैं तुम्हारी शरणागत हूँ" बोलकर, आश्रय लो कोई चिन्ता नहीं रहेगी।

(६३०) व्यासदेव ने हृदय की शान्ति के लिये श्रीमद् भागवत् का प्रणयन किया है। हृदय ही सब, हृदय प्रसन्न होने पर और कुछ बाकी नही रहता। हृदय को शान्त किये जाने पर हृदय में ही हृदयेश्वर का अनुसंधान करना कर्तव्य।

(६३१) हृदय कमल को ध्यान का अभ्यास करो, पुनः पुनः हृदय में मन निवेश करने की चेष्टा करो बहु शास्त्र ने एक वाक्य में हृदयकमल की ही बात किया है ।

(६३२) निम्नमुखी हृदय कमल का ध्यान करते करते वह उर्ध्वमुखी हो जायगा, हृदय कमल रक्तवर्ण अष्टदल विशिष्ट है । उसमें सूर्यमंडल, चन्द्रमंडल वह्नि है तुम्हारे इष्ट पदम के बीज कोष में किञ्जल के ऊपर उपविष्ट है। यदि ऐसा न कर सको तो केवल पद्म का ही ध्यान करो ।

(६३३) यह संसार सभी दुःखों की खान । अविच्छेद सुख अथवा, दुख भोग करना किसी के भी भाग्य में नही घटित होता है। जिसको वर्तमान में अतुल सुख सागर में निमग्न देखा जा रहा है, उसी को क्षण भर में परम अपार दुख सागर में पतित होते प्रत्यक्ष देखा जाता है ।

भारत के ब्राह्मण

(६३४) काल के प्रभाव से सभी चला गया है । अब ब्राह्मणलोग कर्म दोष के कारण

सर्वहारा, लांछित, घृणित। भारत की यह दुदर्शा – जाति को, देश को बचाने के लिये ब्राह्मणों को फिर से स्वधर्म में प्रतिष्ठित होना होगा।

(६३५) ब्राह्मण के सहस्र गायत्री नित्य जप करने से तीन मास दस दिन में लाख गायत्री जप हो जायेगा, इस भाव से जप करने से तीन वर्ष चार माह में बारह लाख गायत्री जप हो जायेगा। इससे वह पूर्ण ब्राह्मण हो जायेगा उसकी खोई हुयी शक्ति लौट आयेगी।

(६३६) ब्राह्मण की त्रिकाल सन्ध्या करना अवश्य कर्तव्य। धर्म-कर्म भ्रष्ट – आत्महारा, ऐहिक सर्वस्व ब्राह्मण, संयम से रहकर – ब्रह्मचर्य अवलम्बन करता हुआ (ऋतुकाल में एक दिन स्त्री गमन करने वाले ब्राह्मण को ब्रह्मचारी में गिना जाता है।) सात्विक आहार पूर्वक प्रति दिन इष्ट देव की कृपा लाभ करने के हेतु कम से कम एक सौ आठ इष्ट गायत्री एवं एक हजार आठ वैदिक गायत्री का जप करने पर वह एक लाख गायत्री जप के पश्चात् सुस्पष्ट भाव

से शक्ति का उद्‌बोध हो रहा है यह समझ सकेगा ।

(६३७) मातायें तथा अन्य वर्णों के पुरुषगण नित्य हजार इष्ट गायत्री जप करने पर लाख गायत्री जप के बाद शक्ति के जागरण का अनुभव करेंगे ही, जो लोग बारह लाख गायत्री का जप कर लेंगे वे लोग कृतार्थ होंगे । उसके पश्चात् कलियुग की श्रेष्ठ साधना नाम-संकीर्तन नियमित भाव से करना सभी का कर्तव्य ।

(६३८) शास्त्र भगवान में अनन्यचित्त होओ, वे विश्व के भरणकर्ता, तुम्हें अन्न वस्त्र की चिंता नही करनी होगी-नही करनी होगी-नही करनी होगी ।

(६३९) आजकल मानवगण अर्थकरी विद्या-अर्जन में निरत हैं । वेद-पाठ चला गया है । वर्तमान समय में ब्राह्मणगण नित्य त्रिसन्ध्या, ब्रह्मयज्ञ-अनुष्ठान एवं सहस्र गायत्री जप कर लें तो शास्त्र नियम का उल्लंघन नही होता है ।

(६४०) शास्त्रों की आज्ञा का उल्लंघन के फलस्वरुप ब्राह्मणगण की जो दुर अवस्था उपस्थित हुई है, मतिमानगण

उसे मर्म में, अनुभव कर रहे हैं। ब्राह्मण यदि कुछ भी न कर सके तो अंततः त्रिसन्ध्या करे और सहस्र गायत्री जप करे - एकबार न हो सके तो तीन बार में, नियमित गीतापाठ एवं चण्डीपाठ कर ले तो शास्त्राज्ञा पालन हो जाता है।

स्वाध्याय

(६४१) स्वाध्याय का उत्कर्ष होने पर इष्ट देवता का संदर्शन होता है। अभिप्राय यही है कि तन्मय एवं संयमित चित्त होकर सर्वदा प्रणव का जप, इष्ट मत्रं का जप, इष्ट देवता का स्तवन, पाठ करते करते क्रमशः जब उसे परिपक्व अर्थात् परम वा उत्कृष्ट अवस्था प्राप्त हो जाती है तब स्वाध्यायशील को इष्ट साक्षात्कार होता है।

(६४२) स्वाध्याय आहार निद्रा की भाँति नित्य कर्तव्य। स्वाध्याय के बिना द्विजातिगण अपने जीवन के लक्ष्य पर स्थिर भाव से अवस्थान नहीं कर सकते हैं।

(६४३) स्वाध्याय का अर्थ है - अर्थ अनुसंधान पूर्वक मन्त्र जप, पुरुष सूक्त, विष्णु

सूक्त, आदि सूक्तों एवं स्तव आदि पाठ और हरि संकीर्तन, आध्यात्म शास्त्र के ग्रंथों का अभ्यास भी स्वाध्याय बोलकर वर्णित होता है ।

(६४४) स्वाध्याय ही मानव जीवन के चरम लक्ष्य को निरन्तर दिखाता हैं । चरम प्राप्य को प्राप्त करा देता हैं स्वाध्याय । काल के प्रभाव से गुरु गृह वास, वेदपाठ चला गया है । तथापि अभी भी सज्जनगण गीता चण्डी इत्यादि ग्रंथ नियमित स्वाध्याय करते हैं ।

(६४५) इसी स्वाध्याय के द्वारा जिहवा की एवं शरीर की जड़ता दूर होती है । वाक् दोष नही रहता, पाप दूर होते जाते हैं सात्विक भाव का आवेश होता है । सिरा-सिरा में, अंग प्रत्यंग में स्वाध्याय-पूत-प्राण पुलक संचारित करते हैं । शरीर रोमांचित होने लगता है, नयन आनन्द से प्रेमाश्रुओं की वर्षा करते हैं । सात्विक भाव के आवेश से स्वाध्यायशील नये राज्य में उपस्थित होता है ।

(६४६) विषय सुख अति तुच्छ है । स्वाध्याय-कारी सुस्पष्ट समझ सकता है - वाक्

अन्तरमुख होकर वैखरी से मध्यमा में उपस्थित होती है, अनाहत नाद लाभ होता है। हृदय-वीणा में स्वतः ही अनाहत नाद झंकृत होते रहता है । स्वाध्याय ही मानवगण को अमृत-अभय-पथ प्रदर्शन कर देता है । स्वाध्याय ही इस मरजीव -कुल को अमरत्व दान कर देता है ।

(६४७) सीताराम के बाबाओं, माताओं ! लड़के लड़कियों को अल्प वयस से ही धर्म-पथ पर चलना सिखा दो। तुम लोग भी आनन्द पाओगे और वे भी आनन्द पायेंगे एवं मानव-देह धारण का साफल्य लाभ पाने में समर्थ होओगे ।

(६४८) श्री गुरुदेव ने बाबाओं एवं माताओं की दुःख शान्ति एवं भूमासुख लाभ के हेतु, इस यंत्र को उपलक्ष्य करके जो सब ग्रंथ दिये है,-बाबाओ, माताओ-श्रद्धा के साथ पाठ करके आनन्दराजि लाभ करते हैं ।

(६४९) गीता, चण्डी, रामायण, महाभारत, आध्यात्मरामायण, विष्णुपुराण प्रभृति सब शास्त्रों का अध्ययन करने से बाबा लोग, एवं माता लोग आनन्द लाभ

करेंगे । उनका नियमित पाठ करने पर ज्ञानार्जन में समर्थ होओगे ।

(६५०) पापों के फल स्वरुप मनुष्य कितने रोगों का भोग करता है वे पाप भी शास्त्रों के अध्ययन से दूर हो जाते है, स्वाध्याय पाप दूर करने का अन्यतम उपाय है ।

(६५१) लोगों के पास अपने पापों को बोल देना, अनुताप करना, तपस्या का अनुष्ठान, शास्त्रादि अध्ययन इत्यादि के द्वारा पापकारी पापमुक्त होता है। गीता, चण्डी रामायण आदि के पाठ के द्वारा भी मनुष्य पापशून्य होता है । वह अपनी अपनी वांछित वस्तु लाभ करता है । - ज्ञान उत्पन्न होता है ।

श्री श्री रामानन्द परीक्षा परिषद

(६५२) श्री श्री ठाकुर ने हमको अज्ञानी गणों के ज्ञान उत्पन्न करने के हेतु ही श्री ग्रंथ रत्न समूह दिये हैं जिससे बाल्यकाल से ही नियमित भाव से इनका पठन हो, इसलिये श्री श्री रामानन्द - महामन्त्र-परीक्षा-परिषद का आविर्भाव भी उन्ही के द्वारा हुआ है ।

(६५३) सीताराम छात्र, छात्री, बाबाओं, माताओं का आहवान करते है–तुम लोगों ने कितनी पुस्तकें पढ़ी हैं, परीक्षा दी है, उससे जो आनन्द तुम्हें मिला है, उससे तुमने जो लाभ किया है – गीता, चण्डी, रामायण प्रभृति का नियमित अध्ययन करने से उससे बहुत गुना वेशी आनन्द पाओगे, लाभवान होओगे ।

(६५४) तुम सीताराम से प्रेम करते हो, आनन्द का पथ चाहते हो, इसीसे सीताराम तुम्हें इस अन्यतम आनन्द पथ के बात की जानकारी दे रहा है। इसके द्वारा लड़के लड़कियों का चरित्रगठन होगा, वे धर्म–बुद्धि लाभ करेंगे, सत्साहस बढ़ेगा वे लोग रोग–शून्य होंगे । सद्ग्रंथ–रुप–सत्संग लाभ करके परमानन्द प्राप्त होंगे। बाल्यकाल से ही लड़के लड़कियों को तैयार करना होता है ।

(६५५) पिता माता का अवश्य कर्तव्य है पुत्र, कन्याओं को धर्म–पथ पर चालित करना। इसके द्वारा पिता माता एवं पुत्र, कन्या भी इस लोक में और परलोक में सुखी होकर रहेंगे, जो पिता माता सन्तति–गण को धर्म–पथ पर

भगवत्प्राप्ति-पथ पर चालित कर देते है, वे ही उनके प्रकृत माता पिता हैं ।

संस्कृत-शिक्षा

(६५६) ये अभ्युदय (जगत कल्याण) एवं मोक्ष सम्बन्धी समस्त ग्रंथ संस्कृत भाषा में रचित । संस्कृत भाषा की शिक्षा के अतिरिक्त अभ्युदय एवं मोक्ष मार्ग के विशेष संधान कोई जान नही सकता है। आजकल अंग्रेजी शिक्षित भारतीयगण अंग्रेजी भाषा की सहायता से वेद एवं अन्य शास्त्रों को समझने की चेष्टा करते हैं, किन्तु उसके द्वारा वे शास्त्र के प्रकृत मर्म को समझने में सक्षम नही होते ।

(६५७) संस्कृत भाषा की शिक्षा से हमारा धार्मिक जीवन अनायास ही गठित होगा। उसके द्वारा जगत का कल्याण होगा धर्महीनों के द्वारा जगत का किसी रुप में कल्याण नही हो सकता है ।

(६५८) धर्महीन, अंग्रेजी शिक्षा से संसार विपद्ग्रस्त है । आर्य नारियाँ 'पतिनारायण' यह बात भूल गई हैं। पुत्र, पिता-माता जगत् पिता, जगत् माता हैं यह बात विस्मृत हो गये

हैं। यौवन में इसका विषमय फल समझ नही पाते है अंत में नयन जल ही बचा रहेगा।

(६५९) हमारी पुण्य भूमि भारत में वाणी के रत्न भण्डार में कितनी अमूल्य मणियाँ रक्षित हैं, वह देखने का हमें अवकाश नही है। वेद, उपनिषद, रामायण, महाभारत पुराण एवं अन्यान्य शास्त्र समूह आज उपेक्षित हो गये हैं यही उपेक्षा ने ही रोग शोक अभाव, दुःख, कष्ट को चिरसाथी बना दिया है।

(६६०) अंग्रेजी राष्ट्रभाषा होने से आपात - सुख - कामी-गण ने अर्थ के हेतु अंग्रेजी पढ़ना आरम्भ किया है। संस्कृत भाषा के परित्याग के फलस्वरुप धीरे धीरे अभाव अशान्ति ने देशवासियों को ग्रस्त कर लिया है। सभी चाहते है कि चाकरी-इस कारण नौकरी मिलना भी दुर्लभ हो गया है। ऐहिक-सर्वस्व-पाश्चात्य जाति की शिक्षा-दीक्षा से आज हम श्रगाल होकर अरण्यरोदन कर रहे हैं।

(६६१) संस्कृत राष्ट्रभाषा होने पर संस्कृत भाषा के अनुशीलन से भारतीय गण अन्तरमुखी गति का संधान पायेंगे, अनन्त भूमा–सुख का सागर जो सबके अपने अपने अंतर में विद्यमान है, उसको समझने में समर्थ होंगे। मानव जीवन का प्रकृत लक्ष्य जो श्री भगवान को लाभ करना है वह समझकर उसको लाभ करने हेतु वाल्यकाल से ही चेष्टा करेंगे।

(६६२) प्रकृत एवं विकृत छंद भेद में, छन्द दो प्रकार के होते हैं। जगत की सृष्टि होती है विकृत छंद में, वहिर्मुखी गति के कारण विकृत छंद। प्रकृत छन्द जीवन को परम आनन्दमय परमपद की ओर ले जाता है।

(६६३) अंग्रेजी प्रभृति भाषाओं के ग्रंथ समूह विकृत छंद में रचित हुये हैं। उनके अध्ययन से तथा यथेच्छ भोजन से ब्रह्मचर्य हीनता से समस्त इन्द्रियाँ बहिर्मुखी होने से, मानवगण बाहर के रुप, रस से सुख लाभ करने के लिये निरन्तर वाह्य विषयों की ओर धावित होकर, जल के भ्रम में मरीचिका की ओर

धावित पंथ में जाने वाले की तरह दग्ध हो रहे हैं।

(६६४) संस्कृत भाषा से रचित ग्रंथ प्रायः छन्दोवद्ध हैं। उनका पाठ करने से प्राण विकृत छन्द त्यागकर प्रकृत छन्द की ओर अभिमुख होता है। उच्च स्वर से स्तवपाठ वा चण्डी पाठकारी व्यक्ति आनन्द लाभ करते है, शरीर रोमांचित हो जाता है। नैत्रों से अश्रु प्रवाहित होते रहते हैं। वे क्षणकाल के लिये भी परम निवृत्ति लाभ कर लेते हैं। इसका कारण है प्राणों को स्वच्छन्द गति लाभ।

(६६५) कर गणना एक सार्थकता है, नित्य संख्या रखके गणना करके जप करके उसके बाद जितने समय तक हो सके, हाथ जोड़कर बैठे रहो।

योग-जपादि

(६६६) प्रथम योग रोग नष्ट करता है फिर जड़ता दूर होती है। अनन्तर समरस होकर चन्द्र अनवरत सुधा वर्षण करता है। पवन के साथ अग्नि समस्त दिशाओं से धातुओं के

समूह को संग्रह कर देता है। नाना प्रकार के नाद प्रवर्तित होते हैं। कलेवर कोमल हो जाता है।

(६६७) भक्त की आकांक्षा की एकमात्र वस्तु है श्री भगवान । भक्त अनन्यभाव से श्री भगवान के शरणागत होकर, उनका साक्षात् दर्शन करने के हेतु योगानुष्ठान करे, और कोई भी अभिलाषा किसी भी रुप में हृदय में स्थान न पायें । 'मैं तुम्हारी शरणागत'-इस मंत्र की किसी प्रकार से भूल न हो ।

(६६८) कभी कभी मृत्यु का भय उपस्थित हो जाता है उस समय और भी दृढ़तापूर्वक साधन करना कर्तव्य। विभूतियाँ प्राप्त करने की इच्छा न जागे, लोगों के निकट से प्रतिष्ठा लाभ की आकांक्षा कोई भी, किसी भी रुप में हृदय में स्थान न दे। यदि उपस्थित हो तो उसे दूर कर देना।

(६६९) जो कुछ विघ्न उपस्थित हो उसे 'सब तुम ही हो' की तोप द्वारा उड़ा देते। अनुकूल प्रतिकूल जो कोई अवस्था आये "सब तुम

हो" 'सब तुम हो'- इस मंत्र के द्वारा उसे दूर कर दे ।

(६७०) सोने को विष्ठा कुण्ड में फैकने पर भी सोना लोहा नही हो जाता किन्तु उसमें मल लिप्त हो जाता हैं। उसी प्रकार ईश्वर दर्शी पुरुष का अधोपात नहीं होता तब भी गात्र में मल लग सकता है । इस कारण ईश्वरदर्शी पुरुष को भी सावधान होना उचित है। जिससे आदर्श विकृत न हो उसी दिशा की ओर उन्हें लक्ष्य रखना अवश्य कर्तव्य ।

(६७१) प्रारब्धवश यदि कोई साधू अन्याय कर्म करता है तो उसे निःसंकोच होकर दूसरों के निकट बोल देता है। - इससे उसकी उसमें आसक्ति नहीं होती है । नूतन कर्मकारी यदि अपने पाप गुप्त रक्खेगा एवं उनका त्याग नही कर सकता है–उनमें आसक्त होकर साधन से भ्रष्ट हो जायेगा ।

(६७२) पाप–पुण्य दोनों के न रहने पर मानव देह लाभ नहीं होता अधम भगवद् भक्तों का चित्त पापकर्मों के वश में परनारी की ओर धावित होने पर भगवद्कृपा से वह

आसक्ति दूर हो जाती है । उत्तम एवं मध्यम भगवद् भक्तों का चित्त परनारी में आसक्त नहीं होता ।

(६७३) कर्म, योग, ज्ञान, तपस्या प्रभृति यदि श्री भगवान का आश्रय करके अनुष्ठान नही किया जाय तो उनके पतन की आशंका बहुत अधिक रहती है । भगवद् आश्रित की भगवान सतत रक्षा करते हैं ।

(६७४) सात्विक आहार नित्य करिवे जे जन ।

नामे प्रेम सुस्थ देह होइवे ताहार ॥

ब्रह्मचर्य अखंण्डित काले उपासन ।

स्वतई होइया जावे सेई महात्मार ॥

(६७५) जितने दिन तक स्त्री पुरुष, भोक्ता-भोग्य का ज्ञान है उतने दिन जो कोई भी क्यों न हो सावधान नहीं रहने से पतन अनिवार्य ।

(६७६) संचय गृहस्थ के लिये अच्छा है। भगवद् भक्त के लिये नहीं - तुम अनन्य भक्त होओ ।

(६७७) जिनका जीवन प्रचारक का है। जो लोग लोक कल्याण में रत हैं वे लोग प्राणान्त

तक भी निर्जन में स्त्री संग न करें। लोगों के मध्य भी स्त्रीगण के साथ हास - परिहास, आलाप, एक संग नाम कीर्तन आदि कभी भी न करे, सतत स्त्रीसंग से दूर रहे एवं माँ, माँ, बोलकर प्रणाम करने का अभ्यास करे, जिहवा माँ नाम त्याग करके क्षण मात्र के लिये भी नही रहे। 'माँ मैं तुम्हारी शरणागत' बोलकर प्रणाम करना न भूले।

कुण्डलिनी–जागरण अवस्था, तपस्या

(६७८) कुण्डलिनी जब क्रियाशील होती है, अखण्ड नाद चलता रहता है। उस समय उस नाद का गतिरोध करने की सामर्थ्य साधक में नही रहती है। कभी निम्न, कभी ऊपर में नाद ब्रह्म लीला करते रहते हैं।

(६७९) साधक सर्व संग त्याग करके जब अवस्थान करता है उस समय इस नाद की पृथक पृथक ध्वनि आविर्भूत होती रहती है। साधक सुने या न सुने, ध्वनि विराम नही होता है। कभी मेघ, कभी भ्रमर, कभी इंजिन, कभी झरना, कभी जय

गुरु, कभी ॐ गुरु, कभी गुरु रव में खेल करती है ।

(६८०) मनुष्य को उस क्षण तक भावना करनी पड़ती है जब तक नाद का आविर्भाव नही होता है । माँ हमारे जाग्रत होते ही और कोई चिन्ता नही रहती । माँ हमारी संगीत के रव में मन–प्राण आप्लुत करके कभी उर्ध्व, कभी निम्न विहार करती है ।

(६८१) अपूर्व है इस नाद का राज्य। साधक की ऐसी सामर्थ्य साध्य नहीं नाद को बन्द कर सके। माँ नृत्य करते करते खेल करती है। साधक मन–प्राण खोकर न जाने कैसा हो जाता है । यन्त्र की भाँति उठता है, बैठता है, सोता है, शास्त्रादि पाठ करता है, विन्दुमात्र भी उसका संस्कार नहीं रहता है ।

(६८२) माँ हमारी नृत्य करके–गीत गाकर समस्त स्मृति संस्कार ध्वंस कर देती है । नाद ही समस्त साधक का काम्य । हठयोगी चरम में नाद लाभ करके तत्पश्चात् अपने आत्म-स्वरुप में स्थिति लाभ करता है ।

(६८३) बहत्तर करोड़ बहत्तर लाख, दस हजार दो सौ एक शिरायें, प्रशिरायें में प्राण विकृत छंद में स्पन्दित हो कर जीव को इन्द्रियों का दास करके पशु में परिणत किया है। प्रायः मानव आज धर्महीन; कोई व्यक्ति धर्म लाभ की आकांक्षा जाग्रत होने पर भी विकृत छंद से स्पंदित प्राण उसको उसके वांछित से दूर ले जाकर आपात सुखमय वाह्य विषयों में अनुरक्त करके असहनीय ज्वाला प्रदान करता है।

(६८४) संस्कृत भाषा के छन्दों में रचित ग्रन्थ समूह प्राण को प्रकृत छंद में स्पन्दित करते हैं। प्राण मात्र सुषुम्ना अभिमुख होकर आनन्द पाता रहता है। सुषुम्ना-प्रवेश के आनन्द की बात का वर्णन नहीं किया जा सकता है।

(६८५) हठयोगीगण को हठयोग की सिद्धि प्राप्त करके नाद प्राप्त होता है। जापकगण निर्जन में जप करते करते जप में सिद्धि होने से नाद पाते हैं तापसगण को तपस्या की सिद्धि होती है नाद प्राप्ति। कोई कैसी भी साधना क्यों न करे साधना का चरम फल है नाद। कारण नाद से ॐकार,

ॐकार से वर्ण की उत्पत्ति, वर्णों के मिलन से भाषा। साधन करने के लिये भाषा चाहिये। अंत में भाषा की समाप्ति न होने पर सिद्धि नही होती है। वह भाषा भी नाद में लय हो जाती है।

(६८६) साधन मार्ग पर जो लोग गमन करते हैं उनको ज्योति एवं नाद को छोड़कर जाने का दूसरा कोई पथ नही है। ज्योति, नाद सकल प्राप्त करते हैं। योगी इस नाद का ध्यान करते करते अपरिमित, निरतिशय ज्योति में मिल जाता है - ज्ञानी इस नाद का ध्यान करते निर्विषय परम ब्रह्म में एकीभूत हो जाता है। और भक्त नाद का ध्यान करते रहने पर भगवान आकर उसे दर्शन देते हैं। नाद कल्पतरु के मूल में जो जिस आकांक्षा करके आश्रय लेता है उसकी वह आशा पूर्ण होती है।

(६८७) साधन, भजन मन की कल्पना नही है, वृथा परिश्रम नही है। साधन-भजन में अपरिसीम आनन्द और जरा मरण से मुक्ति लाभ होता है।

(६८८) यह गोपनीय रहस्य गुरुगण अप्रकाशित रखते हैं। मात्र अधिकारी शिष्य

को ही उपदेश करते हैं, आज तुम लोगों को बताने का कारण, साधारण लोगों की धारणा कि भगवान मन कल्पित हैं और कल्पना की सहायता से ही भगवद् पथ पर जाना पड़ता है। बाह्य में जिस प्रकार आनन्दप्रद सकल विषय हैं–भीतर कुछ नही है–शुष्क। किन्तु ऐसा नही है, भीतर में आनन्द का सागर है। कुछ भी कल्पना नही करनी पड़ती। भीतर में अलौकिक शब्द, स्पर्श, रुप, रस, गन्ध साधक लाभ कर सकता है। मात्र कुछ दिन संयत होकर जप आदि करने से एक एक कर प्रकाशित होता है।

(६८९) "धर्म सत्याज्जायते" सत्य से धर्म जन्मता है। "दयया दानेन च बर्धते" दया और दान द्वारा बर्धित होता है "क्षमायां तिष्ठति" क्षमा में अवस्थान करता है। और 'क्रोधान्नश्यति' क्रोध से नष्ट होता है।

(६९०) "धरति लोकान्" जो लोक समूह को धारण किये हुए है। जिसके द्वारा पुण्यात्मागण 'धृत' अथवा संरक्षित होते हैं उसी को धर्म

बोलकर जानो। जिससे जगत का अभ्युदय एवं मोक्ष लाभ होता है वही धर्म।

(६९१) जो व्यक्ति शास्त्र-पथ पर चलता है उसके चलने के पथ में कोई भी विघ्न उपस्थित नही होता। वह अनायास ही भगवत् कृपा लाभ करने में समर्थ हो जाता है, धर्मपथ अवलम्बन करने से कभी अवनति नही हो सकती।

(६९२) यथाशक्ति वर्णाश्रम धर्म का आचरण और शास्त्रों का अवलम्बन करना मनुष्य मात्र का अवश्य कर्तव्य है। धर्म से भिन्न अन्य जो कुछ भी है सभी अनिष्टजनक है। धर्म-त्याग से शीघ्र ही विनाश प्राप्त हो जाता है। अतएव कभी वर्णाश्रम धर्म त्याग मत करना।

(६९३) मनुष्य की जब तक भोग - सुख की प्रवृत्ति रहती है तब तक धर्म आचरण एवं तपस्या से वह दूर अवस्थान करता है।

(६९४) रोग, स्त्री-पुत्र, धन आदि नाश होने पर सुकृतिमान मानव को अत्यन्त विषाद उपस्थित होता है, विषाद होने से विषाद को दूर करने की चेष्टा जागती है।

(६९५) आत्मज्ञान के लिए आकुलता जागने से शास्त्रदर्शन घटित होता है; शास्त्र-पाठ से तपस्या की प्रवृत्ति होती है । स्त्री-पुत्रादि का सुख का परिणाम भी क्लेशकर है । विवेचना करके तपस्या के लिये आरंभ करता है ।

(६९६) वर्णाश्रम त्यागी के प्रति देवतागण, पितृगण और भगवान भुवन भास्कर कुपित हो जाते हैं उसके फलस्वरुप उसका कुल ध्वंस हो जाता है एवं चिररोगी होकर अधार्मिक, सारा जीवन दुःख भोग करता है ।

(६९७) धर्महीन दारिद्र्य, रोग, शोक, अभाव की ज्वाला से हाहाकार करके दिवस व्यतीत करता है ।

(६९८) तपस्या शब्द के बहु अर्थ हैं । "तपः द्वन्द्व सहनं"-तपस्या क्षुधा-पिपासा, शीत उष्ण आदि द्वन्द्व सहन, आसन काष्ठ मौन (इशारे के द्वारा भी कुछ प्रकाश न करना) आकार मौन (वाङ मात्र निरोध) यथायोग्य कृच्छ-चान्द्रायणादि व्रतों का आचरण करना । कोई कहते है - चित्त प्रसाद के हेतुभूत व्रत नियमादि कर्म तपस्या हैं ।

(६९९) ब्रह्म विषयक ज्ञान का नाम भी तपस्या । कोई कहते हैं- एकादशी आदि का उपवास प्रभृति का अनुष्ठान तपस्या । श्रुति कहती है - "तपोनानशनात्परः" । उपवास की अपेक्षा तपस्या नही है । कोई स्वाध्याय को भी तपस्या शब्द में अभिहित करते हैं "समनस्केन्द्रियाणामे -काग्रकरणं तपः" मन के सहित सकल इन्द्रियों का एकाग्र करने का नाम तपस्या ।

(७००) तपस्या द्वारा सत्वगुण लाभ होता है तपस्या द्वारा असाध्य भी साधित होता है जो जो कामना करता है वह कामना सुसिद्ध होती है ।

(७०१) मनुष्य जो कुछ भी धन धान्य, ऐश्वर्य भोग करता है वह पूर्व तपस्या का फल देव-गण मुनिसमूह सकल ने तपस्या के प्रभाव से महत्व लाभ किया है । आत्म कल्याण के इच्छुक जन गणों को तपस्या अवश्य कर्तव्य ।

(७०२) भगवद् प्राप्ति के हेतु तपस्या करना उचित तपस्या के द्वारा जगत के मूल कारण

प्रणव को जो लोग लाभ कर सकते हैं, वे ही कृतार्थ ।

(७०३) उपाय-तपस्या उनका नाम ग्रहण, स्तव, प्रार्थना । अपूर्व व्यापार, मानवगण श्री भगवान को लाभ किये हुये हैं, मात्र तपस्या नही करने के कारण, प्राप्त करके भी हाहाकार कर रहे हैं ।

विवाह-संस्कार

(७०४) इस विवाह संस्कार के भीतर से "कलि" इस युग के मानवगण को पिता माता का द्वेषकारी, स्त्री किंकर श्वसुर-सास का प्रधान शिष्य, सालों का बन्धु, और मानव गण श्वसुर के अनुगत होकर कौन किसका पिता, कौन किसकी माता, सभी अपने कर्मो के अनुसार सृष्ट हुए, यही बोलेगा । विवाह ही उच्च शिक्षितगण को श्वसुर सास-स्त्री, सालों, सालियों का अनुगत कर देगा ।

(७०५) धन द्वारा पशु क्रय करने से जैसे वह पशु क्रेता का हो जाता है उसी प्रकार धन द्वारा कन्या के लिये खरीदा हुआ वह खरीदने

वाले की कन्या का अनुचर किंकर हो जाता है।

(७०६) धन और प्राण स्वतन्त्र नही हैं। पहले था विवाह काल में कन्या का पिता अपनी सामर्थ्य अनुसार कन्या एवं जामाता को दहेज देते थे। कलि मानवगण के स्त्री एवं श्वसुर आदि के अनुगत करने के लिए वर दहेज मंगता का रुप धारण करते हैं। विवाह में वर का माँगा हुआ धन निर्धारित किया गया, कन्या के पिता ने अर्थ के द्वारा जामाता को क्रय करके कन्या का अनुचर वना देते रहते हैं। अर्थ द्वारा क्रीत व्यक्ति पिता माता की उपेक्षा करके स्त्री एवं श्वसुर कुल का अनुगत होने लगा। आज ऐसा ही हो रहा है।

(७०७) नारी श्वसुर सास से द्वेष करेगी यह कलियुग की भविष्य वाणी है। द्वेष कैसे नही करेगी ? उसका खरीदा हुआ अनुचर यदि पिता माता की सेवा करना चाहेगा तो इससे उसको द्वेष होना स्वाभाविक।

(७०८) अनेक पिता माता को "पुत्रबधू हमारी देखभाल नही करती" "पुत्र भात खाने को नही देता" इत्यादि बोलकर दुःखी

होते सुनता हूँ । तुम्हारा पुत्र खाना क्यों देगा ? माता तुमने पुत्र को गर्भ से धारण करके क्रम से बहुत सा अर्थ खर्च करके उसे एम. ए. पास कराके लिस्ट दी कि "पाँच हजार" रुपया मिलने पर ही पुत्र का विवाह करैगे कन्या के पिता ने पाँच हजार रुपया देकर जमाई को खरीदकर कन्या का अनुचर कर दिया । तुम्हारा पुत्र के ऊपर कोई अधिकार रहा नही । तुमने उसे विक्रय कर दिया। कन्या, पिता के अर्थ से क्रीत स्वामी रुप अनुचर द्वारा अर्थ उपार्जन करवाकर अपने सुख अपनी स्वच्छन्दता सम्पादन करने लगी । अर्थ द्वारा खरीदा हुआ एम. ए. पास युवक स्त्री का किंकर हो गया । श्वसुर-सास उसके गुरु हो गये । साला-साली हुये उसके अपने लोग, वे परामर्श दाता हो गये । माता पिता के संग सम्बन्ध नही रहा, धन द्वारा क्रीत पशु की भाँति, धन द्वारा क्रीत उच्च शिक्षित युवक पितृ कुल त्याग करके श्वसुर कुल का हो गया ।

(७०९) वर्तमान युग का राजा कलि, वर को दहेज देकर, विवाह में प्रवेश करके, पुरुष को नारी के वशीभूत करके, उसे पिता माता से विच्युत कर दे रहा है। उच्च शिक्षित एम. ए., रायचांद, प्रेमचांद आदि परीक्षा में उत्तीर्ण युवक गण भी माता पिता द्वारा बेचे जाकर पत्नी के इशारों पर उठते हैं, बैठते हैं ताली बजाकर नृत्य करते रहते हैं यही करना ही तो उचित है क्योकि वे तो क्रीत किये गये हैं वे स्वाधीन नही हैं अवश्य सर्वत्र ऐसा है यह रुप–यह मैं नही कहता, अधिकांश क्या ऐसा नही है ?

(७१०) हे उच्चशिक्षित अविवाहित युवकों के माता पिता ! तुम्हारे पास सीताराम निवेदन करता है यदि पुत्र को वश में रखना चाहते हो, अपना वशंधर बोलकर गौरवान्वित होना चाहते हो, यदि पुत्र को सेवा सुश्रूषा, पितृ मातृ भक्ति चाहते हो, पुत्र को विक्रय मत करो। पुत्र के विवाह मे माँग मत करो।

(७११) पुत्र को विक्रय करके उसे पराधीन मत करो उसे पितृ मातृ सेवा के अधिकार से च्युत मत करो। यदि करोगे तो पुत्र के

द्वारा उपेक्षित होओगे, इसमें कोई संशय नही।

(७१२) प्रियतम उच्चशिक्षित युवकवृंद! सीताराम की बात निश्चय ही तुम्हारी समझ में आगई है। यदि स्वाधीन रहना चाहते हो, यदि पत्नी को धर्म पत्नी के रुप में चाहते हो तो पुत्र विक्रय के इच्छुक पिता माता के चरण पकड़ कर उनको रोको वे लोग तुम्हें विक्रयकर चिरदिन स्त्री, श्वसुर कुल को दान न कर दें।

(७१३) तुम ने बी० ए०, एम० ए० पास किया है। प्रियतम! कितना धन कमाओगे उपस्थित धन द्वारा माता पिता की सेवा करो। सत् कर्मों का अनुष्ठान करो, धर्म पत्नी को उसी भाव में ग्रहण करो कि दोनों प्राण एक सा होके चलो–उसी परम प्रेम पारावार की ओर, मानव जन्म सार्थक हो।

विविध

(७१४) आज सब एम० ए०, बी० ए० उच्च शिक्षा लाभ करके अर्थोपार्जन कर रहे हैं प्रतिष्ठा लाभ कर रहे हैं, किन्तु तृप्त नही

हो पा रहे हैं। तृप्ति का केन्द्र खो दिया है। इसी कारण उन बाबा लोगों को कहता हूँ- 'प्राण' को नियंत्रित करके खोई हुई शक्ति फिर से प्राप्त करो।

(७१५) आज प्राण विभिन्न दिशाओं में भाग रहा है। इसीसे इतना हाहाकार ! उपाय-प्राण को नियंत्रित करना। नियंत्रण करने का उपाय सत्वगुण की बृद्धि, यथाकाल उपासना, सात्विक आहार, रजो और तमोगुण को संयमित करके सत्व को बर्धित करने के लिये नित्य नियमित जप। भगवान के अस्तित्व में विन्दु मात्र भी संशय नही रखना।

(७१६) तुम्हारी देह, तुम नही हो, यह बात साधु सज्जनों एवं शास्त्रों में सुनी है किन्तु तुमने अनुभव करने की चेष्टा नही की। "मैं देह हूँ"-यह बोध ही अविद्या। जब तक यह बोध तुम्हारा दूर नही होगा तब तक तुम तुमको (अपने को) नही पाओगे।

(७१७) मात्र जन्म ग्रहण किया, लिखना पढ़ना सीखा संसार किया, तब तुम देह हो। आये गुरुदेव, कृपा करके उन्होने तुम्हें ग्रहण

कर लिया; उसी दिन से तुम साधक। जब कृपामय गुरुदेव ने तुम्हें एकदम आत्मसात् कर लिया, तब से यह देह गुरुदेव की देह हो गयी तब देह तुम्हारी नही रह गई – देह गुरुदेव की (हो गई)।

(७१८) जिसदिन "मैं" "मैं" करके हृदय में कोई बुद बुद या तरंग नही उठेगी, उस दिन समझोगे, गुरुदेव ने प्रकृत ही आत्मसात् कर लिया।

(७१९) तुम जिस भी अवस्था में हो, उस अवस्था में ही उपाय है आओ, आगे आओ–देहाभिमानी ! आत्मज्ञान लाभ करने के हेतु आगे आओ, आओ साधक ! आगे आओ–तुम्हारा पथ–तुम केवल गुरू सेवा करो। गुरू तुमको आत्मसात् कर लेंगे।

(७२०) आओ चरित्र हीन ! निरर्थक वीर्यक्षय के कारण आज क्या दशा हो गई है, यह तो मर्म मर्म में समझ रहे हो। अब भी उपाय है। सात्विक आहार, यथाकाल उपासना (इक्कीस हजार छः सौ इष्ट मंत्र जप) और ब्रह्मचर्य का अवलम्बन करो एवं

स्वाध्याय करो, ठाकुर की करुणा लाभ कर सकोगे तुम्हारे हृत वीर्य के लाभ से नव जीवन पा सकोगे ।

(७२१) साधक का जीवन स्वाभाविक जीवन चक्षु-कर्ण नासिका प्रभृति इन्द्रिय मण्डल बाह्य शब्द-स्पर्श-रुप-रस-गन्ध लेने के हेतु पागल की भाँति दौड़ी जा रही हैं । यह जीवन आविधिक जीवन । इसे जीवन नही बोला जाता है, यह है मरण । ऋषिगण इतनी सहज व्यवस्था कर गये हैं कि मनुष्य नित्य कर्मों के भीतर से ही जीवन जय कर सकता है ।

(७२२) आज विज्ञानविद्‌गणों ने भी प्रकृत-पथ प्राप्त नही किया है । अरे, अरे, क्या प्रकृति ही सब कुछ है । जो प्रकृति के खेल से सब कुछ हो जायेगा ? प्रकृति सब कुछ नही है । प्रकृति उनकी संगिनी मात्र - क्रीड़ा संगिनी ।

प्रातः मध्यान्ह सन्ध्याकाल कृत्य

(७२३) तुम प्रातःकाल-प्रातः सन्ध्या गुरु पूजा शिव पूजा, विष्णु पूजा और इष्ट देवता की पूजा करते हुए स्तवस्तोत्र सब का

पाठ एवं प्रार्थना करेगा गीता, रामायण और भागवत, चण्डी प्रभृति पाठ रुप स्वाध्याय करते हुये कम से कम एक या दो घंटा जप करके कुछ क्षण करताल बजाकर महामन्त्र -

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ॥

नाम संकीर्तन करेगा, सूर्य को अर्घ्य देगा और सूर्य प्रणाम, गुरु प्रणाम, इष्ट प्रणाम करके प्रातः काल के कृत्य सम्पन्न करेगा ।

(७२४) मध्यान्ह में - मध्यान्ह संध्या यथासाध्य गायत्री जप, इष्ट मत्रं जप और प्रार्थना करना एवं पंच महायज्ञों का अनुष्ठान करना । १- ब्रह्मयज्ञ - वेदाध्ययन २- देव यज्ञ-देवपूजा और होम ३- पितृयज्ञ - पितृ श्राद्ध तर्पण ४- भूतयज्ञ वैश्वदेवबलि ५- नृयज्ञ - अतिथि पूजा, अतिथि को कुछ देना चाहिये । घर मे अतिथि रह रहा हो तो इष्टदेवता को निवेदित अन्न उसे भोजन कराकर भोजन करे । अनिवेदित कोई खाद्य पदार्थ नही खावे ।

(७२५) सायंकाल में - सायं सन्ध्या और यथासाध्य गायत्री जप और प्रार्थना के पश्चात् कम से कम पाँच मिनिट मौन रहे। उसके बाद यथा शक्ति मन्त्रादि जप के अंत में स्तव स्वोत्रों का पाठ करते हुये कम से कम एक दो घंटा अथवा उससे अधिक समय सनृत्य महामंत्र कीर्तन करे। नृत्य द्वारा शरीर कृत पाप क्षय हो जाते हैं। उसके बाद रात्रि का आहार करके शय्या में, मस्तक में गुरु का ध्यान और हृदय में इष्ट देवता का ध्यान करते हुए यथा शक्ति गुरु मंत्र इष्टमंत्र और महामंत्र का जप करते करते निद्रा की जाय। इसके द्वारा ही तुम तुम्हारे परम स्वरुप लाभ करने में समर्थ होओगे।

वर्ण-वर्जित

(७२६) हे वर्ण के बाहर वालों ! तुम गुरु सेवा, भगवत् सेवा, नाम संकीर्तन, त्रिकाल प्रार्थना करो। अहिंसा, सत्यवाक्य कथन, शुचिता एवं अचौर्य, इन्द्रिय संयम ये सब धर्म समूह सब लोगों का अनुष्ठेय धर्म है। नाम करते करते तुम श्री गुरुदेव के

हो जाओ । तब तुम वर्ण के बाहर नही रहोगे तुम गुरुदेव के गर्भभूत होकर आनन्द में अवस्थान करोगे आनन्द में बोलो केवल-

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ॥

सीताराम जय राजाराम, गौरीशंकर सीताराम ।

जय गुरु जय नाम जय सीताराम ॥

स्त्री मुख दर्शन और परिणाम

(७२७) उस युग में था कि माई लोगों के मुख की ओर देखकर कोई बात नहीं करता था अब ऐसा युग आ गया है - माताओं के मुख की ओर देखना छोड़कर कोई बात करना ही नहीं जानता ।

(७२८) हे चिरमुक्त पुरुष ! रमणी के बाहु बन्धन में बँधा रहना क्या तुम्हें शोभा देता है, यह सत्य है कि रमण सुख के बराबर कोई दूसरा सुख नहीं है । किन्तु रमण सुख

ब्रह्म सुख का आभास मात्र है। कितना स्त्री संग किया है; कितना सुख एवं दूसरे ही क्षण नरक की यंत्रणा क्या नहीं भोगी है ? बोलो, अपने हृदय पर हाथ देकर बोलो।

(७२९) मक्षिका के ब्रण स्वाद की भाँति–पुनः पुनः इस रमण सुख के द्वारा तुम्हारा आत्म भाव दूरीभूत हो गया है; तुम अपने को साधारण मनुष्य बोलकर परिचय दे रहे हो।

(७३०) तुमने स्त्री - पुत्र आत्मीयों को लेकर संसार रचना की है; यही तुम्हारा विश्व केन्द्र हो गया है। इसके और भी कुछ है उसे जानने का प्रयोजन बोध तुम नहीं करते हो।

(७३१) तुम, तुम्हारी स्त्री, पुत्र, कन्या, जमाई,–यही तुम्हारा जगत है; इन थोड़े से लोगों का पालन पोषण करने में समर्थ होने पर तुम अपने को कृतार्थ हुआ समझते हो, नहीं–नहीं–तुम इतने छोटे नहीं हो। तुम्हारे भीतर श्री भगवान की समस्त शक्ति है।

संसार त्याग नही

(७३२) तुम्हे संसार छोड़ना नही होगा, स्त्री पुत्र का त्याग नही करना होगा, इस सबके मध्य से, स्त्री पुत्र के भीतर से ही, मैं तुमको तुम्हारे आनन्द राज्य में पहुँचा दूँगा। तुम्हारा प्रकृत स्वरुप दे दूँगा–एक बार अपनी ओर देखो क्या अष्टपाश में स्वयं बन्दी बने हुए हो, तुम मुक्त हो, तुम्हारा कोई बन्धन नही।

(७३३) मै केवल चाहता हूँ – जो युवक हैं उन्हें ब्रह्मचर्य के व्रत में दीक्षित करना चाहता हूँ। किया है–स्त्री संग तो बहुत किया है ! अच्छा, इस बार स्त्री संग का त्याग कर दो। तुम्हें उससे अधिक आनन्द दूँगा।

(७३४) ये जो तुम्हारी सहधर्मिणी है – ये कौन है जानते हो ? ये तुम्हारी इष्ट देवी है। तुममें रमणी संग की कामना जाग्रत हुई थी इसी से माँ को रमणी होकर आना पड़ा। इसबार अब प्रतिज्ञा करके माता पुत्र, भाई बहिन होकर तुम साधन राज्य में अग्रसर हो जाओ।

(७३५) इस देह में – इसी जन्म में तुम तुम्हारे आत्मस्वरुप लाभ करोगे, सात्विक शुद्ध आहार, यथाकाल उपासना, स्वाध्याय, सत्संग एवं नित्य जप से ।

(७३६) बात और कुछ भी नहीं है। अपने आत्म स्वरुप से तुम हट गये हो, नीचे खिसक गये हो – च्युत हो गये हो जप करते करते प्रतिष्ठित होओ। यह दैनन्दिन साधना के माध्यम से होगा ।

(७३७) तुम्हें कोई काम त्यागना नहीं होगा । जिस प्रकार संसार करते हो वह संसार तुम्हारा रहेगा उसी के भीतर तुम तीन घंटे का समय दो ।

(७३८) नित्य प्रातः मध्यान्ह में तथा सन्ध्या समय तुम अपने आत्मस्वरुप का अनुभव करो । किसी सुदूर भविष्य में किसी अनुभूत सुख के तुम अधिकारी बनोगे यह बात नहीं है। सदा इसी संसार में रहकर परम सुख पाओगे । और इस संसार में रहकर भी मुक्त होकर रहोगे।

(७३९) आज विज्ञान ने जो घोर अंधकार की सृष्टि की है। इसके द्वारा तुम कृतार्थ नही होओगे । लोगों को नेत्र सुख देनेवाला

आनन्द दान कारी विज्ञान आज शतमुख से प्रशंसित है । किन्तु ओरे भारत के नित्यमुक्त गण, यह विज्ञान तुम लोगों के लिये नहीं है । इस विज्ञान से कही अधिक उच्चस्तर में तुम खड़े हुये हो ।

त्रिविध - ऋण

(७४०) मनुष्य जब जन्म लेता है तब वह तीन प्रकार के ऋणों से ग्रस्त जन्मता है । देवऋण, ऋषिऋण, और पितृऋण । देव पूजादि के द्वारा देवऋण चुकाना पड़ता है वेदादि शास्त्रों के पाठ द्वारा ऋषिऋण चुकाना पड़ता है और पितृऋण पुत्र उत्पादन से चुकाना होता है ।

(७४१) ऋतुकाल में (ऋतु के चार दिन) स्त्री गमन नहीं करना चाहिये । चक्षु नष्ट हो जाती हैं, आज जो बहुत से लोगों का चक्षु के रोग से ग्रस्त देखा जाता है वे लोग इस समय में स्त्री गमन करते हैं ।

(७४२) जल होता है प्राण का उपादान, जल से ही प्राण होता है इस कारण जल में जितने क्षण स्नानादि करोगे, उस समय जितना जलपान करोगे उसी परिमाण में तुम्हारा शरीर स्वस्थ रहेगा, प्राण की शक्ति

वर्धित होगी। इस कारण आर्य ऋषियों का प्रथम आदेश रहता था प्रातःस्नान करो।

(७४३) पंच भौतिक शरीर प्रति नियत क्षय हो रहा है। उन्मुक्त स्थान में भ्रमण करने से आकाश का क्षय पूर्ण होता है। उन्मुक्त वायु द्वारा – विशुद्ध वायु सेवन से, भ्रमण से वायु का क्षय पूर्ण होता है। स्नान और पान में जल का क्षय पूर्ण होता है। मिट्टी को शरीर में लगाने, मिट्टी के व्यवहार द्वारा क्षिति का क्षय पूर्ण होता है। और सूर्य के ताप में नियमित अवस्थान करने से शरीर के तेज अशं का क्षय पूर्ण होता है।

(७४४) सन्ध्या करना भगवान की प्रथम आज्ञा है "अहरहः सन्ध्यामुपासीत" वैदिक युग में अन्य कोई साधना नहीं थी – केवल सन्ध्या उपासना। सन्ध्या होती है सम्यक् ध्यान, इसका अर्थ है एक मात्र परम पुरुष ही सब वेष धारण करके अवस्थान करते हैं इसी अनुभव का प्रयास।

(७४५) एक बात है – "जब तक स्वाँस तब तक आशा" जो लोग इस प्रकार सब कुछ खोये हुये हैं वे भी प्राणपन से श्रीभगवान को

पुकारे तो वे कृपा करते हैं – इस सम्बन्ध में कोई संशय नहीं है – नहीं है – नहीं है ।

(७४६) ब्रह्मचर्य के बिना शरीर का स्वास्थ्य नही रह सकता, ब्रह्मचर्य की अपरिसीम शक्ति से मनुष्य देवताओं का भी देवता हो जाता है ।

(७४७) ये जो नर – नारी का आकर्षण है इसका एक कारण होता है । जगत की सृष्टि हुई है पुरुष – प्रकृति के मिश्रण से । संसार में कोई ऐसा पदार्थ नहीं है जिसमें ये दोनों नही है इसीलिये परस्पर परस्पर को आकर्षित करते हैं ।

(७४८) नित्य सवेरे उठकर शौचादिक के पश्चात् स्नान करना चाहिये । प्रातः स्नान के द्वारा शरीर, मन दोनों ही सत्व भावापन्न हो जाते हैं । शास्त्र बोलते हैं कि प्रातःस्नान अशेष पापों का नाश करता है ।

(७४९) ब्रह्मचर्य रक्षा के पक्ष में व्यायाम खूब अनुकूल । नित्य व्यायाम करना कर्तव्य ।

(७५०) योगव्यायाम, आसन, मुद्राओं का अभ्यास भी खूब अच्छा होता है। गुरुदेव के उपदेश के बिना प्राणायाम करना उचित नहीं है "बद्ध पद्मासन" द्वारा शरीर रोगशून्य और शक्ति का उद्‌बोध होता है।

(७५१) संयम, सद्ग्रंथ मनुष्य को परमानन्द में स्थिर कर देते है। शुद्ध आहार, सत्संग उपासना प्रभृति जिसको कुछ भी करने की सामर्थ्य नहीं है, ऐसे जो सर्वहारा (सब कुछ खोया हुआ) हैं उनके लिये भी उपाय है 'राम' नाम।

(७५२) मन को निज नियंत्रण में रखने के लिये श्री भगवान का नाम, अच्छा गीत, कविता, प्रार्थना, जप प्रभृति एक न एक को सर्वदा रसना में रखना चाहिये। इससे मन अपनी ताल पर नहीं नाच सकेगा।

(७५३) मूल कारण है आनन्द; इस आनन्द का आधार है वीर्य। नर नारी के मिलन से वही वीर्य जब शरीर से विच्युत होता है तब अतिशय आनन्द होता है।

(७५४) वही वीर्य-ब्रह्म, देह को त्यागकर जाने के समय अपरिसीम आनन्द दे जाता है,

वह यदि देह में ही रहे तो मनुष्य और भी कितना अलौकिक आनन्द लाभ करने में समर्थ होता है इसकी थाह कौन कर सकता है ।

(७५५) जितने दिन तक मनुष्य के पाप रहते हैं उतने दिन तक भेद बुद्धि, कलह इत्यादि त्याग नहीं कर सकता ।

(७५६) तपस्या, ईश्वर आराधना द्वारा मनुष्य जब एक दम विगत - पाप हो जाता है, तब एक के अतिरिक्त दूसरे का (द्वैत) नहीं रह जाता है ।

(७५७) जीभ किसी की निन्दा न करे, कटु भाषा न बोले, इससे महा अपराध होता है, साधन राज्य में आगे नही बढ़ सकोगे, - नहीं बढ़ सकोगे । श्री भगवान ही सब वेष में लीला कर रहे हैं, जिसकी निन्दा करेगा, भगवान की ही निन्दा करना होगा ।

(७५८) केवल अर्जन करते रहो, वर्जन की चेष्टा नहीं करनी पड़ेगी । वर्जन अपने आप ही हो जायेगा । वर्ण, आश्रम, किस तरह कैसे किस प्रकार से गल कर गिर पड़ेगे, भक्त को मालूम तक नहीं होगा ।

(७५९) जो लोग निरर्थक बकते रहते हैं वे ही पागल हैं । और जो लोग सर्वदा गुरु गुरु, राम राम, दुर्गा दुर्गा करते हैं वे लोग चतुर हैं – वे ही प्रकृत लोग हैं । यदि कुछ शान्ति है तो दुर्गा नाम में है, यातना नाशिनी माँ को पुकारो, वे सकल यातना दूर कर देंगी ।

(७६०) संसार त्याग बोलने से ही त्याग नहीं हो जाता, बाबा रे ! त्याग का अभ्यास करना होता है । संसार में रहकर एक दो घंटा करके इस प्रकार दस बारह घंटा ध्यान, जप में रहने का अभ्यास जो कर सके वह संसार त्यागने में समर्थ हो जाता है । संसार में रहकर संसार को त्यागने का अभ्यास करने की चेष्टा करे ।

(७६१) जिसकी चिन्ता करते हैं उसके पाप पुण्य, अच्छा, बुरा इसका भी कुछ ध्यान हो जाता है, पापी का मुख देखने से, बात करने से, चिंतन से पाप संक्रमित होता है संगति का व्यापार इससे अच्छी तरह समझा जा सकता है । पापी का संग करने से सद्य सद्य चित्त मलिन होता है ।

(७६२) भगवद् लाभ के हेतु साधन भजन रत, जप-होम-मौन-तपस्या परायण साधक ! यदि तुम रमणी के नयनों के सौन्दर्य की बात विस्मृत नहीं कर पाओगे जान लो कि तुम्हारा समस्त व्यर्थ हो जायेगा। कब किस दिन रमणी तुम्हारा ग्रास करके जीवन व्यर्थ कर देगी, पुनः कितने जन्म जन्मान्तरों तक अपेक्षा करनी होगी, इस कारण सावधान ! सावधान ! सावधान ! रमणी-नयन-सौन्दर्य देखने की जो पिपासा हृदय से एक दम पोंछ कर फैंक दो। - उपाय होता है - रमणी रमणी नहीं है - जननी; उसको जब देखो तभी -

सर्व मंगल मंगल्ये शिवे सर्वार्थ साधिके।

शरण्ये त्र्यम्बके गौरी नारायणी नमोस्तुते ॥

बोलकर प्रणाम करो। इसमें भूल न हो।

(७६३) ऐसे दुर्भाग्य साधक हैं जो साधक का वेष परिधान करके कितनी रमणीयों का सर्वनाश करते हैं, इसका कोई ठिकाना नहीं। क्या हुआ ! क्या हुआ ! काम

क्रीड़ा करके आत्मनाश करने के हेतु साधक का वेष नही होता । तुम्हारी साधना का महामंत्र है - 'माँ' नाम । इस महामंत्र का अवलम्बन कर तुम तुम्हारे दुर्निवार कामादि समस्त रिपुओं को जय करके माँ के चरणों में चिरसंयुक्त हो जाओ ।

(७६४) ऐसा जीवन पाया है, गुरु कृपा की है । मंत्र प्राप्त किया है । उस मंत्र का अवलम्बन करके अग्रसर होते रहो । नियमित प्रातः, मध्यान्ह में, सायंकाल में, मध्य रात्रि में जप करने में सचेष्ट होओ । मंत्र साधारण वस्तु नही है । मन्त्र ही भगवान ।

(७६५) छोड़ो ! भगवान को लेकर तुमको खेलना होगा । जिस प्रकार खिलाकर सजाकर सुलाकर तुम्हें तृप्ति हो, उसी भाव से भगवान को लेकर खेलते रहो ।

(७६६) यहाँ वेदान्त का 'नेति नेति' विचार नहीं है । शंकर का अद्वैतवाद नहीं है । है केवल तुम और तुम्हारे प्रियतम ! इसी भगवान के साथ खेल करते करते ही तुम समस्त खेलों से मुक्त हो जाओगे ।

(७६७) प्रथम गुरु प्रयोजन है; गुरु का आश्रय करो वे तुम्हारे सर्व दुःख, सर्व चिन्ता दूर करके आनन्द के पथ पर ले जायेंगे । तुम्हें और कुछ भावना की जरुरत नहीं होगी । तुम एकदम निश्चिन्त हो जाओगे ।

(७६८) यह हंस, मुर्गी, बकरी का भोजन करके, सन्तान जनन प्रवृति दिन - दिन परिवर्धित होती है, कितने बकरे बकरी को जन्म दिया है । हरि ! हरि ! प्रतिनियत रमण क्रिया से क्या परितृप्ति पाई है ? परितृप्ति तो आई नहीं और आयेगी भी नहीं ।

(७६९) दूसरे का कुर्ता, जूता, कपड़ा, गमछा, बिछौना प्रभृति व्यवहार करना नहीं ।

(७७०) प्रियतम पथिक ! तुम बकरी, मुरगी, अंडा प्याज प्रभृति द्वारा जिस देह का पोषण कर रहे हो, यह देह यहीं रखकर जाना होगा, अण्डा क्या है, बन्धु जानते हो ? मुर्गी अथवा हंस का शुक्र है, डिम्बकोष है; अर्थात हंस शिशु की पूर्वावस्था ।

(७७१) सुन रहा हूँ संतान-नियंत्रण प्रहसन चल रहा है, यह तो इस देश का नहीं है । -

ऐहिक - सर्वस्व - जाति का। जो लोग इस देह को छोड़कर और कुछ नहीं जानते है उनकी ही करना पड़ता है।

(७७२) आज ऐहिक - सर्वस्व - जाति के संग मिलकर तुम तुम्हारे लक्ष्य से भ्रष्ट हो गये हो। 'पुत्रार्थे क्रियते भार्या' यह बात भूल गये हो। केवल बलकर भोजन के द्वारा बल बृद्धि करके पुत्रोत्पादन कर रहे हो। पुत्रोत्पादन के क्षेत्र का भी तुम अंत कर देते हो। संधान करो, कितनी स्त्रियाँ स्त्री - रोगों से ग्रस्त नहीं है ? इसका कारण यही क्या पाशविक अत्याचार नहीं है ? भावना करो भली भाँति भावना करो।

(७७३) देख लो ! कितनी संतानों को जन्म दिया है, उसमें से प्रकृत संतान कितनी पाये हो ? पिता माता की जन्म जन्मान्तर की साधना न रहे तो सुपुत्र होता नहीं; केवल कितने ही बकरियों को जन्म दिया है ! संन्धान लो - बहुत से पुत्र, पितृ-मातृ-द्रोही पिता माता के प्रतिकूल हैं जो सुपुत्र हैं उन्हें भी तुम पथ नहीं दिखा पाते हो कारण तुम निज पथ का भी संधान

नही जानते हो, स्वयं आजीवन अर्थ पिपासा, काम चिंता में जल जल कर विनष्ट हो रहे हो ।

(७७४) हतभाग्य पथिक ! ब्लड प्रेशर, डाइबिटीज प्रभृति रोग समूह क्या आगन्तुक हैं ? तुमने स्वेच्छा से ग्रहण किये हैं । यौवन के दिन मन में लाओ, उस समय जिस संसार में मिले जुले हो, तब कितनी स्त्रियों का सर्वनाश किया है । उस समय तुम सोचते थे कि तुम खूब सौभाग्यवान पुरुष हो, बहुत युवतियाँ तुम्हारी अनुगता । उसके पश्चात् कठिन कठिन रोग । कारण है वही महापाप ।

परस्त्री-संग

(७७५) जगत में जितने पाप हैं पर नारी संग के समान दूसरा पाप नही है । पुरुष की आयु, विद्या, तपस्या परस्त्री रमण के द्वारा नष्ट हो जाते हैं ।

(७७६) कठोर ब्रह्मचर्य - अवलम्बन करने के लिये सचेष्ट होओ, सात्विक आहार करो ! बकरी, अंडा, प्याज प्रभृति बलकर खाद्य भोजन करके देह को सबल रखने

की चेष्टा कर रहे हो, हरि, हरि ! क्या यह भी होता है ।

(७७७) शुक्रक्षयकारी देह कुछ भी आहार करने से सबल नहीं रह सकता - नहीं रह सकता - नहीं रह सकता ।

(७७८) वायस्कोप की छवि की भाँति, स्वप्न-राज्य की भाँति, बाबू लागों का ऐश्वर्य देखते रहो, उससे तुम्हारा क्या ?

(७७९) मृत्यु जिसके सम्मुख खड़ी है पुनः वह संसार का सुख ऐश्वर्य क्या देखेगा ? और नारी के लिये क्यों आकुल होगा ?

(७८०) मृत्यु पल पल दण्ड दण्ड ग्रास कर रही है, उसके लिये क्या कर रहे हो ?

(७८१) मरण यात्री को संसार के अभावों के लिये क्या चिंता है ? आता हो आने दो, जो होता हो वह होने दो, उठते बैठते, खाते सोते केवल पुकारते रहो ।

(७८२) भय क्यों खाते हो ? माँ के पुत्र हो तुम, संसार के भूत-नृत्य को देखकर क्यों सिहर रहे हो ? वह सब कुछ नहीं है - पुकारो । आज तक कोई भी

श्री भगवान का आश्रय लेकर विफल मनोरथ नहीं हुआ ।

(७८३) पुकारो – जब तब, शुचि, अशुचि, सोकर, बैठते, जैसे सकते हो पुकारो, आत्मीय स्वजन सकल का पृथक पृथक अदृष्ट है उनके लिये इतनी भावना (चिंता) की क्या जरुरत । संसार गौण, मुख्य भगवद् उपासना ।

(७८४) संसार अच्छा लगना कुछ नहीं है । संसार अच्छा न लगना ही अच्छा है ।

(७८५) मेरे मन में आता है दासत्व, दारिद्र्य-मोचन करो; यह प्रार्थना करने की अपेक्षा, मुझे भक्ति दो – प्रार्थना करना अच्छा है । भक्ति पाने से कुछ भी अभाव नहीं रह जायेगा ।

(७८६) स्त्रियों को देखते ही ठाकुर जी ने क्या श्रंगार धारण किया है ऐसा मन में भावना कर मन ही मन प्रणाम करे अभ्यास करे । मुख में नाम रख । और वे ही सब वेष धारण किये हैं यह मन में सोचकर प्रणाम करने का अभ्यास करो । किसी नूतन-पथ पर चलना आरंभ करने से भूल भ्रान्ति होती

ही है, वह होने दो, तथापि उद्यम-त्याग नहीं करना ।

(७८७) अपनी ओर देखने में तो कुछ आशा नहीं पाते हो तब भी भरोसा है कि वे पातकी तारन, पतित पावन हैं ।

(७८८) काम क्रोधादि अत्याचार सहन करते करते ही नाम करना होगा । नाम करते करते यह सब नही रहैगे, निश्चय ही नहीं रहैगे ।

(७८९) हम लोग निराश्रय नहीं हैं हमारे एक जन रक्षा करने वाले हैं, कोई भय नहीं है । कितने कर्म लेकर हम लोग आये हैं, उन सब का भोग तो करना ही होगा । राम राम करके उनको भोगते जाने के सिवा और क्या उपाय है ?

भस्म व तिलक धारण-परमाणु

(७९०) भस्म धारण से सकल सात्विक परमाणु आकर्षित होकर भस्म धारण करने वाले का सत्व भाव बर्धित करता है ।

(७९१) जो सर्वांगे भस्म लेपन करते हैं, राजस, तामस परमाणुओं का समूह उनके पास नहीं आ सकते हैं ।

(७९२) वैष्णव लोग जो द्वादश अंगों में तिलक करते हैं सात्विक परमाणु वृंद तिलक से आकर्षित होकर उनके तिलक लगे अंगों में एकीभूत होकर सत्वगुण बढ़ा देते हैं ।

(७९३) जटा द्वारा सात्विक परमाणु सकल आकर्षित होकर जटा में एकीभूत होकर जटाधारी के सत्व भाव को प्रबल कर देते हैं क्रम से शुद्ध सत्व लाभ से वे गुणातीत हो जाते हैं माला धारण करने का उद्देश्य भी यही है ।

(७९४) परमाणु का नामान्तर है प्रकृति । वह त्रिगुणमयी है । परमाणु और प्रकृति अभिन्न पदार्थ ।

(७९५) जगत में जो कुछ भी भला बुरा व्यापार हो रहा है, सब परमाणुओं से । मनुष्य, पशु, पक्षी प्रभृति रुप में परमाणु ही लीला कर रहे हैं ।

(७९६) जो कुछ दृष्टिगोचर हो रहा है सभी परमाणु संघात-मूर्ति ।

(७९७) पुरुष यदि माइयों की मुख की ओर न देखकर माताओं के पाँव की ओर देखे तब माताओं के सात्विक परमाणु आकर उसमें सत्वभाव की वृद्धि करैगे। और सर्वदा माँ, माँ कर सके तो जगन्माता के परमाणु, अम्वरीष की रक्षा जिस प्रकार सुदर्शन चक्र करता था उसी प्रकार 'माँ', नामकारी भक्त की रक्षा करेगी।

(७९८) जगज्जननी त्रिगुणमयी महामाया कल्पलतारुपिणी अनन्त शब्द–स्पर्श–रुप–रस–गंध, अनन्त भावों को लेकर विश्व में व्याप्त होकर विराज रही है। जिस समय जो व्यक्ति देह, इन्द्रियों, मन द्वारा जो प्रार्थना करेगा तत्क्षण माँ हमारी परमाणु रुप में उसकी प्रार्थित वस्तु प्रदान करेगी।

(७९९) कोई राम राम जप कर रहा है, उसके पास राम के परमाणु आयेंगे, कोई स्तवन कर रहे हैं, वहाँ माँ स्तवन के परमाणु भेज देगी। इच्छा जाग्रत होते ही माँ परमाणु भेजती है। साधारण लोग यह समझ नहीं सकते। योगी लोग उसे पकड़के दिखा सकते हैं।

(८००) जब भी कोई बात बोली जाती या सोची जाती है उसी क्षण उस जाति के परमाणु आकर्षित होते हैं ।

(८०१) कुकर्म, मलिन परमाणु सकल को आकर्षित कर ले आते है। जहाँ मन्द काम होते है वहाँ मलिन परमाणु घर बनाकर रहते है ।

(८०२) मन्द परमाणु पापी को अन्दर और बाहर से घेरे रहते हैं। वह सर्वदा निद्रा जागरण में मन्द परमाणुओं के मध्य निवास करता है ।

मंत्र जप लेखन

(८०३) मंत्र के अक्षरों पर एक के बाद एक करके चिन्ता करने से हृदय में अथवा भ्रू-मध्य को मन ही मन लिखना, मन ही मन उच्चारण करना, वही होता है मानस जप ।

(८०४) जप करते करते चित्त शुद्ध हो जाता है। रज, तम का भाव दूर हो जाता है; कम्प, अश्रु-पुलक, नाद-ज्योति प्रभृति को आविर्भाव होने लगता है, प्राण आनन्द

से पूर्ण हो उठता है, भगवद् दर्शन के लिये उत्कंठा बढती जाती है ।

पर निन्दा

(८०५) दूसरे की निन्दा करना और अपना सर्वनाश करना एक ही बात है। निन्दित के पाप लेने पड़ते हैं एवं उसके इष्ट देवता ही सब रुप रचकर लीला कर रहे हैं, उस परम सत्य से वंचित होकर जन्म जन्मातर दुःख भोग करते रहता है ।

(८०६) नाम और 'मैं' पृथक नही हैं रसना में, श्वास में, मन में, प्राण में, नाम रक्खो नाम में डूबे रहो, तभी मेरे हृदय में रह पाओगे और सब ज्वाला शीतल हो जायेगी ।

(८०७) वर्तमान नग्न सभ्यता के युग में आत्म रक्षा करना खूब कठिन है यह बात अति सत्य है - तथापि चेष्टा करते रहना होगा। नेत्रों को सदा नीचे की ओर देखते रहने की चेष्टा करेगा - बस, ट्राम में चढ़ने के लिये जितना आँख उठाने का प्रयोजन हो उतनी ही उठावें मुख से केवल माँ माँ माँ करना ।

(८०८) दैवात् माताओं के मुख, वक्ष पर दृष्टि पड़ जाय तो 'सर्वमंगलमंगल्ये शिवे-' बोलकर प्रणाम करेगा। कुछ दिन इस प्रकार करने से ऊपर से माँ की कृपा उतर आयेगी, उस समय चित्त में तरंगे नहीं उठेगी ।

(८०९) सब श्री भगवान बोलकर प्रणाम करने का अभ्यास करते करते चित्त शुद्ध हो जाने पर खराब अच्छा हो जायेगा, उस समय भक्त बोल सकता है - यह क्या साज रचा है तूने माँ - मैं तो तेरी संतान हूँ, मुझे अपना यह रुप मत दिखा, मैं तुझे प्रणाम करता हूँ ।

(८१०) जीवन में कभी किसी प्रकार के भी नशे की वस्तु शौक करके भी वा भ्रम करके भी अथवा किसी के अनुरोध करने पर भी ग्रहण नही करेगा, नहीं करेगा, नही करेगा ।

(८११) पितृ - मातृ - भक्त - पुत्र विश्वजयी होता है - महाराष्ट्र देश में पण्डरपुर में पितृ - मातृ - भक्त पुत्र पुण्डरीक को श्री भगवान ने अपनी इच्छा से बिना माँगें दर्शन दिया था ।

(८१२) अखण्ड जप करने का अभ्यास कर लो, परमानन्द लाभ करोगे ।

(८१३) सेवा काज में स्थिर रहने से भी जप ध्यान आदि का प्रयोजन है सेवा का मूल लक्ष्य श्री भगवान को लाभ करना इसलिए सेवा कार्य चलाते रहे, नाम लीला चिंतन करना मत छोड़ना ।

(८१४) नित्य दिवा रात्रि होती है, इसी प्रकार साधन राज्य में भी होता रहता है कोई चिंता नही; यथाशक्ति साधन करें ।

(८१५) जो नाम करते हो, वही नाम सर्वदा करे और जो किताब पढ़ने से आँख में पानी आ जाय, शरीर में रोमांच हो, समय निकाल कर वही किताब पढ़े । - उसी लीला चिन्ता करे, लीला चिन्ता लेटे लेटे भी हो सकती है ।

(८१६) देह से दूर रहने पर मन के निकट रहना हो जाता है । गोपीगण मिलन में कृष्ण को नही पाये - पाया था विरह में ।

(८१७) दीक्षा के पश्चात् देह श्री गुरु भगवान का हो जाता है । 'मैं' की जगह 'यह दास', 'मेरे' की जगह 'इस दास का' - इस प्रकार व्यवहार करने का अभ्यास करेगा ।

(८१८) मनुष्य चेष्टा करने पर जाग्रत अवस्था में भगवद् - पूजा, ध्यान आदि लेकर रह सकता है, किन्तु स्वप्नावस्था में यदि देवदर्शन हो तो इसे ठाकुर की यथेष्ट कृपा बोला जाता है ।

(८१९) मनुष्य जिस समय जन्म लेता है, उसी समय यह किस भाव से देह त्याग करेगा, वह निश्चित हो जाता है । किसी की एक बाल तोड़ने की भी सामर्थ्य नहीं है । मरण एक बार छोड़ दोबार नहीं होता ।

(८२०) विघ्नों के द्वारा पुनः पुनः प्रतिहत होने पर भी उत्तम पुरुष आरम्भ किये कर्मों का त्याग नहीं करते ।

(८२१) दूसरा जैसा भी व्यवहार क्यों न करे, हास्य मुख से ठाकुर का आशीर्वाद मन में रखकर उसकी सेवा करना, किसी के दोष देखना नहीं; अपने दोष देखना ।

(८२२) गुरु जिन पर कृपा करते हैं उनके कर्म दोष गुरु मंत्रादि से दूर चले जाने पर भी गुरु उनका त्याग नहीं करते ।

(८२३) जप के समय यदि मल मूत्र का वेग उपस्थित हो तो मल मूत्र त्याग करके आकर जप करना । वायु वृद्धि हो जाने

पर नियमित रुप से तुलसी पत्तों का रस खायेगा ।

(८२४) तुलसी वा रुद्राक्ष की माला होवे तो गले में पहन कर जप करना । तुलसी गाछ गमले में लगाकर गमला पास रख जप करना ।

(८२५) हविष्यकारी दीर्घायु, निरोग देह लाभ करते हैं – एवं शीघ्र ही भगवत् कृपा लाभ करने में समर्थ होते हैं और जगत में देवता की भाँति पूजा प्राप्त होती है । आहार शुद्धि ही परमानन्द लाभ करने का परम उपाय है ।

(८२६) जप में भविष्य भासने लगता है, इसे जानने की इच्छा करना अच्छा नही है – जप के लक्ष्य से च्युत करके अभिमान बढ़ा देता है ।

(८२७) दान करने से दाता कृतार्थ होता है, ग्रहीता नहीं ।

(८२८) तुमने कितना दुःख पाया है – सोचो सीता माँ की बात – श्री भगवान की पत्नी होकर भी कितना दुख भोग किया – सोचो नल दमयन्ती की कथा – सोचो श्रीवत्स चिंता की कथा – सोचो पाण्डवों की दुर्गति की

कथा – सोचो वृन्दावन में नन्द यशोदा, सखागण, प्रेममयी राधा और संगिनियों की कथा ।

(८२९) मनुष्य मात्र में ही त्रुटि, विच्युति रहेगी ही, ऐसा होने पर उनकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये – सबको हृदय में खींचकर लाना पड़ेगा ।

(८३०) जब तक कर्तृत्व बोध रहेगा तब तक क्रोध रहेगा । क्रोध का कारण होता है कामना का प्रतिघात, जैसे कोई बोले आज आलू भात देना – यदि न दिया जाय तो क्रोध होगा ।

(८३१) जितने दिन मनुष्य साधन में रस नहीं पाता है उतने दिनों बाहर का कोलाहल रहेगा ।

(८३२) सायंकाल को गंगा के तीर में बैठकर आधा घंटा, पौन घंटा जल की ओर देखो, जल की ओर देखते रहो – अति शीघ्र मन एकाग्र हो जायेगा ।

(८३३) नाम रुपे अवतीर्ण स्वयं भगवान ।
नाम गाने नाम दाने सौंपो मन प्राण ।।

(८३४) नाम कल्पतरु मूले जे जन जा चाबे ।
अवश्य ही सेई भक्त ताहाई पाइबे ।।

(८३५) चिर मंगलमय भगवान ।
जा करेन तिनी सकलि मंगल ।
गाहे वेद पुराण ॥

(८३६) अब हम लोगों को आत्मा का संधान मिला, वे कर्ण के कर्ण, अर्थात् कर्ण की श्रवण शक्ति, वाक्य की वाक्-शक्ति प्राण के प्राण । दृष्टि, कर्णादि इन्द्रियों के आवास-स्थान है, दर्शन शक्ति ही आत्मा ।

(८३७) सनातन धर्म - पथ विरोधी पाठय - विषय - निर्वाचन और सहशिक्षा छात्र-छात्रीगणों का सर्वनाश कर रहा है - ब्रह्मचर्य के बिना जाठरी विद्या भी नही हो सकती है ।

(८३८) जो संकल्प करोगे, बोलोगे, उसकी रक्षा करने की चेष्टा करना-यह होने पर अव्यर्थ संकल्प होगा - जो मन में करोगे वह सत्य हो जायेगा - अवश्य अन्याय संकल्प नही ।

(८३९) जितने दिन तक मनुष्य भगवत् दर्शन नही पाता उतने दिनों तक प्रकृत शान्ति नही पा सकता ।

(८४०) ठाकुर स्थिर है - यही कारण उनके पास जाने के लिये, उनसे मिलने के लिये चाहिये वायु एवं मन की स्थिरता ।

(८४१) मनुष्य को प्रकृत मनुष्यत्व दान करती है तपस्या, देह का नशा न काटने से मनुष्य आनन्द के उद्‌गम स्थान का पता नही पा सकता, तपस्या द्वारा ही देह का नशा दूर करना होता है ।

शास्त्र व्याख्या

(८४२) जिन शास्त्रों में भोग का प्राबल्य है, समझना होगा कि उन स्थानों पर शास्त्रों की व्याख्या विकृत है, शास्त्रों की प्रकृत व्याख्या जानने के लिये एक सहज संकेत - संयममूलक व्याख्या शास्त्र की प्रकृत व्याख्या - असंयममूलक व्याख्या विकृत व्याख्या ।

(८४३) हम लोग प्रणाम करेंगे - जो लोग पैरों को हाथ नही देने देंगे, दूर से करना । इसलिये बात है - दूर से सभी को प्रणाम करेगा - दूर से प्रणाम ही अच्छा है । हमारा कर्तव्य है प्रणाम करना, अतएव प्रणाम करेगा ।

(८४४) मनुष्य के सब समय एक रकम अच्छा नहीं लगता है । जिस समय जैसा अच्छा लगे उसी भाव से, जप, पाठ कीर्तन करे । सभी जमा खाते में जमा होगा ।

(८४५) नाम करना, जप करना, सीताराम की अति बड़ी सेवा है निज को तृण की भाँति भावना करे – नाम करते करते तरु जैसा सह्यगुण अर्जन करो ।

(८४६) शास्त्र श्री भगवान की वाङ्मयी मूर्ति, बिना तपस्या के कोई उसका प्रकृत अर्थ हृदयंगम करने में समर्थ नहीं होता ।

(८४७) क्रमभूल से भी, कोई भी हमारा शत्रु, यह मन में न हो – मेरे इष्ट देवता नाना मूर्ति धारण करके शुभाशुभ कर्मों का क्षय कर रहे हैं ।

(८४८) तुम लोग आदर्श बनो, भारत के घर घर में क्रन्दन का शोर है, तुम आनन्द का प्लावन लाओ ।

(८४९) कुल्हाड़ी वृक्ष को काटती है । किन्तु प्रकृत वृक्ष को काटता है काटनेवाला । कुठार यंत्र–मात्र ।

(८५०) रोमकूपों से दूषित पदार्थ प्रतिक्षण शरीर से बाहर निकलते हैं, फुल पैन्ट; कमीज प्रभृति सर्वदा परिधान करते रहने से दूषित पदार्थ देह में बैठकर मन को चंचल कर देता है। "मैं देह" - यह अज्ञान है। यह पाप कुछ से भी नहीं जाता है।

(८५१) भक्त को माला और तिलक अवश्य धारण करना, माला तिलक धारण करके "मैं भगवान का दास हूँ" भगवान का अंतरंग होकर देहात्मपाश से मुक्त होता है।

(८५२) आम की गुठली रोप देने से ही आम नहीं होता है। काल की अपेक्षा करता है। अशौचसंकोचकारी बाबालोगों को यजनकारी ब्राह्मण को सजा भोग करनी होती है, करनी होगी ही होगी।

(८५३) इष्ट नाम के समय गायत्री (मन में) आने से गायत्री जप करे। नियमित नित्यप्रति हजार गायत्री जप की चेष्टा करे। सन्ध्या करे।

(८५४) ध्यान काल में जो मूर्ति आये, उसी का ध्यान करना, जोर करके कुछ भी करने की प्रयोजन नहीं है।

(८५५) फोटो को जिस दिन साक्षात् गुरुजी समझेगा उस दिन फोटो तुमसे बात करेगी, जितने दिन फोटो बोध रहेगा उतने दिन अनुभव नहीं मिलेगा ।

(८५६) सद् गुरु और भगवान अभिन्न हैं, भगवान ही गुरु रुप में आते हैं ।

(८५७) कोई स्वाधीन नहीं है, सब ही भगवान के खेल की पुतली है, वे जिस भाव में नचायेंगे उसी भाव में नाचना होगा ।

(८५८) नामी को भक्त कितने क्षणों के लिये पाता है - एक निमिष में दर्शन देकर वे अंन्तरहित हो जाते है । और नाम चिर दिन तक पकड़े रखते हैं उसका उदय अस्त नही होता, नाम चिरसंगी, अभिन्न हृदय बन्धु । इसी लिये नामी से नाम बड़ा है ।

(८५९) मनुष्य लोक संगत के द्वारा जिस प्रकार क्षतिग्रस्त होता है वैसा क्षति ग्रस्त ओर किसी चीज से नही होता । लोकसंग में भगवान की आलोचना - भगवन् नाम की चेष्टा रखे ।

सत्य - कथा

(८६०) जीभ को सावधान रखना, अल्प बोलना, मिथ्या और बेकार बात जीभ उच्चारण न करे ।

(८६१) सत्य ही भगवान, जो सत्य का आश्रय लिये रहता है वह भगवान को लाभ करता है। मिथ्या भाषण से बड़ा कोई और पाप नहीं है ।

(८६२) कुत्ता पालने से पतित होता है - इसके माने है - कि कुत्ते में इतने तामस परमाणु रहते हैं कि उसके द्वारा चिन्मयी गति लाभ नहीं कर सकता, वह पथ रोध हो जाता है। इस कारण नारकीय गति प्राप्त होती है ।

(८६३) एक जन ही सेव्य - सेवक रुप से पूजा ले रहे हैं - पूजा कर रहे हैं ।

(८६४) सभी लोगों के प्राण एक ही हैं । एक आकाश से वायु, एक ही प्राणाधीश भगवान तुम लोगों का और सीताराम का आकार धारण कर के लीला कर रहे हैं । देह अलग अलग होने से भी एक

ही प्राण है। रुप धारण किया है एक जन ने ही बहुरुप में।

(८६५) परस्पर के प्रति आकषर्ण प्रेम सब निज ही के प्रति है - अपनी आत्मा के प्रति ही यह आकषर्ण।

(८६६) जितने दैहिक पाप है नृत्य एवं कीर्तन से नष्ट हो जाते है - अति शीघ्र ही सत्व प्रवाह शरीर आर मन में चलते रहता है यदि संभव हो तो मातायें द्वार बंद कर के सनृत्य नाम कर सकती हैं - यदि बाहर से दिखाई नही पड़ता हो तो।

(८६७) जीवन का लक्ष्य हो - साक्षात् दर्शन। अग्रसर होते रहो। क्षुद्र द्वेष, हिंसा, 'मैं बड़ा हूँ "मैं बुद्धिमान हूँ यह मूर्खता दूर हो। सभी मेरे इष्ट देव की अपर मूर्ति बोलकर कायमनोवाक्य से सबका सम्मान करना सीखो।

(८६८) पराया बोलकर कोई नही रहेगा। पर ही परमेश्वर, पर ही हम लोगों के आदरणीय इष्ट देवता।

(८६९) सीताराम के लड़को ! जो वर्णाश्रम को नहीं मानता हो वे लोग इस पथ पर अग्रसर नहीं हो पायेंगे, नहीं पाओगे,

नहीं सकोगे । शास्त्र निर्दिष्ट वर्णाश्रम के अनुसार चलना ही हम लोगों के लिये पथ ।

(८७०) सांसारिक जितने कुछ विषय है सभी दुःख ही देते हैं । जो जितना जितना विषय सुख–त्याग करता है वह उतना उतना दुःख भोग से दूर रहता है – बहुत दूर चला जाता है ।

(८७१) सुख वा आनंद भगवान को न पाने तक नहीं मिलता है । सब छोड़कर, सब विषयों का त्याग करके केवल भगवान को चाहता हूँ बोल कर यह प्राणपण करना होगा ।

(८७२) सूर्य प्राण स्वरुप, इसी कारण प्रत्येक का सूर्योपासना करना कर्तव्य ।

(८७३) सूर्यताप रोग एवं पाप दोनों ही नष्ट कर देता है । सूर्य सेवी शीघ्र पाप मुक्त होता है । पाप ही ज्ञान लाभ करने में बाधक, पापक्षय होने पर ही स्वतः ही "सब तुम्ही हो" यह ज्ञान लाभ हो जाता है ।

(८७४) कुछ छिपाकर रखने से तुम्ही ठगे जाओगे । मैल का भण्डार दिखाओ, सब

दोष, त्रुटि पोंछ कर परिष्कार करके, नन्दन कानन कर दूँगा ।

(८७५) अनेक बोलते है मन चंचल । जप से मन स्थिर नहीं होता, कैसे होगा ? मन को चिर दिन भटकने दिया, यह चाहिये वह चाहिये, वह अब बोलने मात्र से ही स्थिर होगा, शान्त होगा ?

(८७६) गुरुदेव ने केवल मन्त्र नहीं दिया है; भगवान को दिया है । दस बारह बार, अथवा एक सौ आठ बार जप करोगे तो शान्ति कैसे पाओगे ? कम से कम छः महीने तक इक्कीस हजार छः सौ जप करके देखो, शान्ति पाते हो या नहीं ।

(८७७) मनुष्य निज निज इष्टदेवता का साक्षात्कार कर लेने पर उसके पश्चात् प्रणव का अधिकार प्राप्त करता है । उसके पहले यदि कोई अपने को अधिकारी मन में सोचे, प्रणव का जप करना आरंभ कर देता है तो उसे छः रिपु ताड़ना से अस्थिर कर देते हैं, कर देंगे ही ।

(८७८) मित्र वेष शत्रुओं को जय करने के लिये सहयोग वर्जना, असहयोग करने के अतिरिक्त दूसरा उपाय नहीं है ।

(८७९) हिंसा का त्याग करो कोई भी तुमसे शत्रुता नहीं कर सकेगा।

(८८०) इस संसार में शोक, दुख, रोग, अभाव, ऋण, सुख, ऐश्वर्य, साधुवाद, निन्दावाद कुत्ते की भाँति भौ भौ करके भूँकते ही रहेंगे, उनको किसी को भी ग्राह्य न करके राम राम करते करते अग्रसर होने में समर्थ होने पर कुछ समय तक चीत्कार करते पीछे पीछे दौड़ेंगे - उसके बाद अपने आप नीरव (चुप) हो जायेंगे।

(८८१) रोग, शोक, दुःख, ज्वाला, अभाव, ऋण, धन, ऐश्वर्य, सुख, शान्ति " सभी तुम हो" - यह विश्वास स्थिर होने से और मन आकुल नहीं हो सकेगा।

(८८२) तुम मेरा पाठ सुन रहे हो - स्मरण करते करते पाठ करने से बहुत आनन्द होता है, तुमको भूल कर पाठ करने में थोड़ा भी आनन्द नहीं मिल पाता है।

(८८३) पुनः जब मन में आता है "सब तुम्ही हो" तुम्हें छोड़कर कुछ नहीं है; तुम्हारा विस्मरण भी तुम्ही हो, तब मन थोड़ा शान्त होता है।

(८८४) जो दूर में है उसे चिल्लाकर पुकारना होता है, जो पास में है उसे चिल्ला के पुकारना नहीं पड़ता – यह बात साधुओं के मुख से बोली गई है। अब मन ही मन पुकारो।

"सब तुम्ही हो" साधन

(८८५) नाम, लीला, स्वरुप – इनमें से एक न एक के चिन्तन में मन को नियुक्त रक्खे नहीं तो तुम्हारा मन संसार रचना करके, बड़ा संसारी होकर हाहाकार करता रहेगा।

(८८६) सब वस्तुओं में मुझे देखना आरम्भ करो। सकल शब्दों में मुझे सुनो सकल स्पर्शो में मेरा स्पर्श करो, सकल रसों में मेरा आस्वादन करो, सब गन्धों में मुझे सूँघो ...... मैंने तुम्हें गोद में ले रक्खा है – केवल घूम कर देख।

(८८७) तुम अभिनय को सत्य समझकर यदि रोओगे, हँसोगे, तो इसमें दोष क्या मेरा है ? तुम स्वप्न में राजा होकर पागल की भाँति नृत्य कर रहे हो, यह दोष किसका है ?

(८८८) तुम सब त्याग करो; त्याग-भिन्न मनुष्य शान्ति लाभ नहीं कर सकता ।

(८८९) सब मैं हूँ तू द्रष्टा है, अभिनय देखकर और न रोओ, स्वप्न को सत्य बोलकर और हाहाकार मत करो, तुम क्षण मात्र के लिये भी मत भूलो कि तुम द्रष्टा हो, तुम अभिनेता नही हो - यह बात स्थिर रहे ।

(८९०) मेरे आश्रित जो हो, वे भोगों की ओर क्यो देखेंगे ? मेरे भक्त भोग - विष्ठा के कीड़े नहीं हो सकते ।

(८९१) तुम्हारा स्तूप जैसा अर्थ भी इस मृत्यु संसार से तुम्हारा उद्धार नहीं कर सकेगा अर्थ केवल अनर्थ को लायेगा अर्थ की उपेक्षा करो ।

(८९२) यह जो पची-गली नारी देह है । - मर जाने पर जिसमें कीड़े किल किल करते है । यह नारी देह क्या भोग करने की वस्तु है ? छिः छिः वह नरक है नरक । उस ओर इस तरह से मत देखो, लौट आओ - लौट आओ ।

(८९३) सर्वदा राम राम जप करे और 'भगवान जो कुछ करते हैं मंगल के लिये करते हैं

इस बात में स्थिर विश्वास रखना, तुम्हें रोग, शोक, दुःखादि अभिभूत नहीं कर सकेंगे ।

(८९४) रोग देकर भगवान मंगल ही करते है । रोग भी अच्छा है । रोग में मनुष्य राम राम करना सीखता है स्वप्नमय संसार के लिये हाहाकार करना भूल जाता है ।

(८९५) ठाकुर तो अकिंचन के धन हैं । न, जब तक कुछ अपना बोलकर रहेगा, तब तक ठाकुर दूर दूर रहते हैं जब अपना कहने की बात सब समाप्त हो जाती है, उसी समय ठाकुर हृदय से लगा लेते हैं ।

(८९६) दुष्कर्म ही रोग का कारण हैं । वे इस जन्म कृत न होने से भी उनका फल कहाँ जायेगा ? पूर्वकृत कर्म रोग रुप में आकर निष्ठावान व्यक्तियों को पाप मुक्त करता है ।

(८९७) जो किया जाता है वही कर्म है, श्री भगवान की प्रीति के लिये निष्काम भाव से जो किया जाता है वही कर्मयोग है ।

(८९८) सर्वत्र ब्रह्म दर्शन ही ज्ञान ।

(८९९) ईश्वर में परम अनुरक्ति ही भक्ति ।

(१००) यदि नाम के द्वारा ही सब कुछ होता है तो वेद, उपनिषद, संहिता, पुराण, तन्त्र आदि शास्त्रों का क्या प्रयोजन है ? प्रयोजन है नाम के प्रति अनुराग लाने के लिये । शास्त्र नहीं पढ़ने से नाम में अनुराग आयेगा कैसे ?

(१०१) मनुष्य ब्रह्मसागर में डुबकी लगाता है एक शब्द लेके – जहाँ के शास्त्र है वहीं रहता है, केवल सत्य का निर्णय करके एक से एकाग्र होने के लिये ही शास्त्र ।

(१०२) सर्वदा नाम लेकर रह सको तो जीवन मुक्त हो जाओगे ।

(१०३) जब त्याग का पथ धारण किया है तब और ममता की छाप मत लगाओ । जिस वस्तु पर (मेरी की) छाप लगाओगे यह निश्चित जान लो बन्धु ! अत्यन्त यंत्रणा सहन करनी पड़ेगी ।

(१०४) अभ्यास, वैराग्य – दोनों ही चाहिये । यदि वैराग्य नहीं होगा तो अभ्यास कोई नहीं रख सकता है ।

(१०५) वे ही यथार्थ साधक हैं जो मृत्यु को सम्मुख रखकर साधना करते हैं ।

(९०६) जो जितना जप करता है वह उतने क्षण उसमें डूबा हुआ रह सकता है । स्पर्श लाभ करने के हेतु है जप, बढ़ाओ जप, तुम्हें अधिक क्षण तक स्पर्श पाओगे, जप त्याग करो नही – तुम श्री भगवान में ही डूबे रहोगे ।

(९०७) जप ही इस युग में एकमात्र उपाय । जप करते करते ठाकुर में डूब जाओ ।

(९०८) जप की भित्ति के ऊपर ब्रह्मज्ञान रुप प्रासाद अवस्थित है । यदि भित्ति को दृढ़ से भी दृढ़तर न बनाकर उस पर ज्ञान का प्रासाद बनाने की चेष्टा करोगे तब देखोगे कि तुम केवल मुँख के ही ब्रह्म ज्ञानी हुए हो ।

(९०९) चलाओ जप, दिन के बाद दिन, रात्रि के बाद रात्रि, नाम करते करते ही व्यतीत हो, आसन स्थिर हो जाय । "आसन जयात् प्राण जयः" आसन जय होने पर प्राण जय होंगे । उसके पश्चात् देखोगे ठाकुर स्वयं तुम्हें दर्शन देंगे ।

(९१०) ठाकुर से भी ठाकुर का नाम बड़ा है, नाम करो । निर्गुण सगुण जिस रुप में

उनको चाहते हो उसी रुप में उनको लाभ करोगे ।

(९११) लोक-वंचना के लिये साधू सजकर साधना का दिखावा करना मिथ्याचार है । मन को जय करने हेतु जो चेष्टा की जाती है वह मिथ्याचार नहीं हो सकती ।

(९१२) लय, विक्षेप जय करने के लिये तो है साधना । साधक अवस्था में तो मन का चांचल्य रहेगा ही । एक भाव में अवस्थान का नाम है सिद्धावस्था ।

(९१३) मेरा नाम है गोविन्द, तुम अन्यमनस्क भाव से पुकार रहे हो गोविन्द - मैं उत्तर नहीं दूँगा ? मैं तुम्हारे पास नहीं आऊँगा ? तुम्हारे पास जाकर भी यदि मैं देखू कि तुम अन्यमनस्क हो तो भी मैं कहूँगा - ओ बन्धु ! मैं आया हूँ । इसी प्रकार अन्यमनस्क होकर पुकारने पर भी वे हँसते हँसते आकर कहते हैं - ए भाई, मैं आया हूँ ।

(९१४) भाई रे ! रत्नाकर 'मरा मरा' का जप किया था अजामिल ने पुत्र को नारायण कहकर पुकारा था - इससे ही वे लोग

कृतार्थ हो गये। तब अन्यमनस्क मन से पुकारने पर उनका अनुसंधान क्यों नही मिलेगा ?

(११५) नाम है सरसों को जलाना, साँप जही कही भी हो सरसों पारा जिस प्रकार उसे खिंचकर ले आती है उसी प्रकार मन जहाँ कही भी क्यों न रहे नाम उसको खींचकर ले ही आयेगा।

(११६) जो कोई कितना भी आसक्त हो, पापी हो - तथापि उसे भय नही वह यदि उनका आश्रय ले, कातर कण्ठ से बोले - ठाकुर ! मैं बड़ा पापी हूँ बड़ा ही गतिहीन हूँ, तुम अपने ही गुणों के कारण कृपा करो, तो उसे वे उठाकर हृदय से लगा लेते हैं।

(११७) उनका नाम पतित पावन अधम तारण है। अत्यन्त बड़ा पातकी भी उनकी कृपा लाभ से वंचित नही होता।

(११८) इस शास्त्र के रक्षक श्री भगवान हैं। किसकी साध्य है कि इसको दलित कर सके। अग्नि चिर दिन अग्नि है। उसको जो लात मारेगा उसका ही पैर जल जायेगा।

(९१९) कौन बोलता है कि शास्त्र मनुष्य द्वारा रचे गये है मनुष्य इनका स्मारक तो है किन्तु भगवान ही शास्त्र कर्ता। ऋषिगणों के समाधि-पूत हृदय में श्री भगवान ने शास्त्र प्रकाशित किया ।

(९२०) शालिग्राम शिला का स्पर्श करने से कोटि जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं, पुनर्जन्म नही होता है हरि का सान्निध्य प्राप्त होता है ।

(९२१) जप पूजा शालिग्राम शिला के समीप में करने से कोटि गुना फल होता है ।

कलि धर्म

(९२२) हिन्दू नाम धारी विधर्मीगण शास्त्र, मूर्ति पूजा और वर्णाश्रम धर्म की जिस प्रकार अजस्र निन्दा करते हैं - इससे मुझको (शास्त्र) ठीक नही रख सका । मुझे क्षमा किजिये ।

(९२३) यह सब तो होगा ही - ऋषिगण यह बोल गये हैं । इससे प्रमाणित होता है कि ऋषियों की वाणी अभ्रान्त है । किस युग में वे कह गये हैं - कलियुग में मनुष्य

पुण्य वर्जित, दुराचाररत होगा, सत्य बात नही बोलेगा पिता–माता की भक्ति नही करेगा, स्त्री को देवता के आसन पर बैठाकर काम किंकर पुरुष उसकी सेवा करेगा ।

(९२४) विष्णुद्वेषी, सब कुछ खानेवाले, म्लेच्छाचाररत पशुबुद्धिवाले मानवगण शास्त्र को दलित करके नये नये स्वकल्पित पाखण्डधर्म की सृष्टि करैगे । देखो बाबा देखो । ऋषिगण द्वारा कही गयी यह सब बातें अक्षरशः सत्य हैं कि नहीं ? छोड़ो, कलियुग के प्राबल्य से इस प्रकार होने पर भी सनातन धर्म धार्मिक लोगों की रक्षा करेगा ।

(९२५) इस भारत महा श्मशान में भूत प्रेतगण की भीषण चीत्कार से भय मत करो, राम राम करो, सब उत्पात हट जायेगा ।

(९२६) पहले वे स्थूल रुप में दर्शन देते हैं, वर देते है , उसके बाद ब्रह्मज्ञान होता है ।

(९२७) एक साधने से सब होता है । सब साधने से सब जाता है । पहले दीक्षा लेकर प्राणपण से मंत्र सिद्धि कि चेष्टा करनी

पड़ती है। प्रणाली के अनुसार साधन करने से मंन्त्र अवश्य सिद्ध होता है।

(१२८) तुम्हारी साज, पोशाक, सिगरेट का डिब्बा देखकर मैं अच्छी तरह समझ रहा हूँ कि तुममें मुक्ति पाने की कामना नहीं हुई है। जिसके सिर में अग्नि जलती है उसे क्या जामा जोड़ा कपड़ा, संसार करना अच्छा लगता है ? जिसका मरने के समय गंगा जल में जली की गई है वह क्या फिर षोड़शी के साथ पाणि ग्रहण करना चाहता है ?

(१२९) प्राण चले जाने पर देह जिस प्रकार सुख दुःख का अनुभव नहीं कर सकती उसी प्रकार प्राण रहते हुए भी जिसे सुख दुःख का पता नही रहता वे ही मोक्ष आश्रम में वास करने के उपयुक्त हैं ।

सिद्धियाँ

(१३०) लक्ष्य – इष्ट साक्षात्कार लाभ – तब भी आनुसंगिक और सब सिद्धियाँ भी न चाहने पर भी आयेगी।

(९३१) भिक्षुक को जैसे लाख रुपये मुझे नही चाहिये ये बोलना अर्थहीन है- क्योंकि लाख रुपये तो सड़क पर पड़े नही है इसी प्रकार भोग त्याग करने मे असमर्थ, गुरुवाक्य में श्रद्धाहीन साधनकुण्ठ व्यक्ति का यह कहना कि 'मुझे सिद्धि नही चाहिये' - निरर्थक है ।

(९३२) ठीक ठीक साधना हो रही है यह सिद्धि ही जना देगी साधना करने पर सिद्धि अवश्य आयेगी । उस सिद्धि की उपेक्षा करके मूल लक्ष्य में जब तक नही पहुँच जाय तब तक प्राणपण से साधना करनी होगी, निश्चय ही इष्ट साक्षात्कार होगा - होगा ही ।

(९३३) शिव होने के पहले शिव का वेष (ढौंग) रचने से विष की ज्वाला और साँप के काटने से अस्थिर हो जायेगा ।

(९३४) क्या बोल रहे हो ? गुरुदेव साक्षात शंकर हैं - वे सर्वज्ञ हैं, वे सब जानते हैं । तुम्हारे मलिन हृदयदर्पण में श्रीगुरुदेव की मलिन मूर्ति दिखाई देती है किन्तु वह वैसी नही है ।

(९३५) गुरुदेव में दृढ विश्वास के बिना मन्त्र सिद्धि नही होती। गुरु मूर्ख हों, विद्वान हों, सत्पथवर्ती हों अथवा कुमार्गगामी हों, तथापि वे देवता हैं - एकमात्र गति स्वरुप।

(९३६) बाह्य पूजा अधमाधम होने पर भी उसके अधिकारी भी आजकल नही मिलते, तुम्हारे देह को वेशभूषा ठिकसे भली प्रकार सजाया है, संसार चलाने के हेतु दुकान की है, स्त्री पुत्र को संग लेकर आनन्द में हो - इतना वाह्य भाव में अधम से अधम भावों का संग दिवा रात्रि करते हो, इससे तुम्हें असुविधा बोध नही होता - पूजा के समय ही कितनी उच्चाधिकार की बात आकर उपस्थित होती है ?

बाह्य पूजा

(९३७) जब तक वाह्य वस्तुओं के प्रति सौन्दर्य बोध है, तब तक वाह्य पूजा का भी प्रयोजन है।

(१३८) एक ही बात सुनने से ही यदि ब्रह्म ज्ञान हो जाता तो घर घर में ब्रह्मज्ञानी विराजमान होते ।

(१३९) उठते-बैठते, खाते-सोते सर्वदा राम राम अर्थात् जिसके जो इष्ट है वही नाम करो । ठाकुर जब दूर लगते हों, तब चिल्ला कर पुकारे जब पास आ जाँय तो धीरे धीरे, पुकारना चाहिये ।

(१४०) बाद मे पुकारना अपने आप बन्द हो जायेगा । वही (भगवान) पुकारेगा उसके पुकारने पर कुल की मान अभिमान की जलाञ्जलि देकर अकुल के समुद्र में अवश भाव से कूद पड़ना । अहा ! वह तो आनन्द का महापारावार है ।

(१४१) उपासना द्वारा चित्त की एकाग्रता होने पर प्राण सहस्रार में स्थिति लाभ करने से और विन्दु के स्थिर हो जाने पर, तब ही ज्ञान की बात करना उचित है; नही तो कामिनी कांचन लुब्ध अशुद्ध चित्त व्यक्ति की ज्ञान की बात उन्मत्त का प्रलाप है, बकवास मात्र है ।

(१४२) राम राम करते करते सहन करो–वैराग्य के लिए प्रार्थना करो। ठाकुर की कृपा होने पर उस कामना के काजल को पोंछकर फैककर आसक्तियों का बन्धन काटकर फैककर, नाचते नाचते संसार त्याग करो।

(१४३) गंगा में जल है, वृक्षों में फल है भूमि में शय्या है बाहु का तकिया वर्तमान, लोग अभी भी एक मुटठी भिक्षा दे देते है – भावना (चिन्ता) क्या है रे बाबा ! भावना तो वासना की – उस वासना में आग लगा दो – उसे जल जाने दो ! यदि नही दो तो पड़े पड़े रोते रहो।

(१४४) शिव विमुख होने पर केवल दुःख ही पाओगे शिव हैं मंगल ! उस मंगल को जो नर – नारी त्याग करते हैं, उनका क्या कभी मंगल होता है ?

हिन्दू कुल-स्त्री

(१४५) हिन्दू कूल की स्त्री यदि आचार व्यवहार त्याग करे तो उसके लिये उसे अहरहः

यंत्रणा भोगनी होगी। पुत्र से कन्या से स्वामी से केवल यंत्रणा मिलेगी - यह ध्रुव सत्य।

(१४६) यह सीता सावित्री का देश है, इस देश में यथेच्छाचार होने का विषमय फल अवश्य ही फलेगा, सजा हो रही है - रकम, वे रकम, स्त्री रोग आक्रमण कर रहे हैं, असंयमी पुरुषों के दल भी कितने रकम के रोग भोग रहे हैं।

गुरु - मंत्र - इष्ट

(१४७) वे इष्ट देवता, वे गुरु रुप में आते है, वे मंत्र रुप से अधिष्ठान करते हैं।

(१४८) गुरु देवता और मंत्र में ऐक्य की भावना न करने से मन्त्र सिद्ध नही होता। गुरु ही मंत्र, देवता।

(१४९) गुरु में मानव बुद्धि, मंत्र में अक्षर बुद्धि और प्रतिमा में शिला बुद्धि करने से नरक में जाना होता है।

श्रद्धा

(९५०) श्रद्धा सब साधनाओं का प्राण है, जहाँ श्रद्धा नहीं है, वहाँ कुछ नहीं है ।

(९५१) गुरु एवं वेदान्त के वाक्यों में विश्वास का नाम श्रद्धा है ।

(९५२) श्रद्धा ही सर्व सिद्धियों का हेतु, श्रद्धा ही सत्यज्ञान का कारण, सत्यज्ञान – ज्ञान एवं श्रद्धा अभिन्न सामग्री । इसी कारण यह समझ जाने से गुरु और मन्त्र में श्रद्धा रखने वाले शिष्य के गुरु – चाहे जैसे भी हों, उसका मंत्रचैतन्य हो जाता है ।

(९५३) अनेक लोग खेल खेल में आकर दीक्षा लेते हैं । दो एक मास के पश्चात् छोड़ देते हैं, किसी प्रकार दस बार नहीं तो एक सौ आठ बार जप करे । इस प्रकार के शिष्यों के लिए सिद्ध गुरु भी क्या कर सकते है ? काज तो करना होगा । काज न करने पर फल किस प्रकार होगा ?

(९५४) मंत्र सब शिवोक्त । इच्छानुसार जो कुछ बोल देने से मंत्र नहीं होता ।

(९५५) गुरुदत्त मन्त्र रुपी घड़े को जप रुपी रस्सी से बाँधकर कूप में प्रवेश कराकर जय गुरू बोलकर खीचंना शुरु करने से ही अच्छा जल मिलेगा ही, पौरुष शक्ति का पुरस्कार तो है ही ।

(९५६) यदि प्यास रहे रे बाबा ! जल का अभाव नही होता है - अभाव होता है पिपासा का !

(९५७) भीतर का अनुभव जिस तिस को नही बोलना चाहिये, बोलने पर अनुभव नही रहता-रोग होता है ।

(९५८) विस्मय और गर्व - ये दोनों साधन के विशेष रुप से क्षति करनेवाले है । मेरा क्या इस प्रकार भी हो सकता है ? इस प्रकार विस्मय - दोष ।

(९५९) नाम करने से अभी भी मनुष्य भगवान को लाभ कर सकता है, एकबार नही शतबार सहस्रबार अजुतबार लाखबार करोड़बार बोल रहा हूँ अभी भी मनुष्य भगवद् दर्शन पाता है ।

(९६०) यह सनातन धर्म क्या खेल की चीज है ? सनातन धर्म का अस्तित्व लोप कर सके यह शक्ति किसी में नहीं है। फिर भी यह कलियुग है, इस युग में अर्धम प्रबल होगा। यह बात तो ऋषिगण भी बोल गये हैं।

(९६१) इस सनातन धर्म के ऊपर से कितनी बाढ़ आकर निकल गयी है। एक हाथ में कुरान और एक हाथ में कृपाण लेकर मुसलमानों ने आक्रमण किया, तथापि इसका मूलोच्छेद नहीं कर सके, कोई कभी कर भी नहीं सकेगा।

(९६२) युग के माहात्म्य से सनातन धर्म परायण लोग अल्प होने से भी सनातन धर्म का ध्वंस करने की शक्ति किसी में नही है। सहस्र सहस्र भेड़ें यदि दलबद्ध हो जाँय तो क्या सिंह का संहार कर सकती हैं ?

(९६३) 'माँ' नाम की तोप से ब्रज से भी दुर्भेद्य कामना के दुर्ग को उड़ा दो, ओर माँ - माँ - माँ - जो जप करता है, काम क्या उसकी सीमाओं में आ सकता है ?

(९६४) जो लोग अपने पैरों पर खड़े होना चाहते है और अपने को बहुत बड़ा सोचते हैं, उन्हें पग पग पर विपत्ति मिलती है। और जो शरणागत दास होकर यंत्र होकर चलते हैं उनकी वे सतत रक्षा करते हैं।

(९६५) आर्य साधना का मूल लक्ष्य है, देहात्म बोध का परिहार करके एक अद्धितीय अखण्ड "मैं" में स्थिति लाभ करना।

मौन साधन

(९६६) राम राम करते करते भीतर प्रवेश करके चुप करके रह सके तो भगवान को पाया जा सकता है। मौन बहुत बड़ा साधन है।

(९६७) वाक् - संयम के बिना कुछ भी नही होता है। मन अन्तरमुखी नहीं हो सकता।

मंत्र शेष

(९६८) मंत्र ही शान्ति - मंत्र को समाप्त कर डालो - तब समझ पाओगे कि

गुरुदेव ने तुम्हें कौन सा महारत्न दान किया है।

(९६९) मंत्र को शेष कर देने का अर्थ है कि मंत्र शेष हो जायगा। मंत्र और नही रहेगा। मंत्र तुम्हें भगवान के दर्शन कराकर जन्म - मृत्यु - जरा - व्याधि के हाथों से निस्तार कराकर अपने स्वरुपानन्द सागर में मिल जायेगा।

(९७०) तुममें मंत्र उच्चारण करने की सामर्थ्य ही नही रहेगी। मंत्र को मन में करते ही भीतर एक जमाट (प्राण - स्थिर) हो जायेगा। भगवान दिखाई देगें, तब मंत्र शेष (समाप्त) हो जायेगा। तब तुम मंत्र बोलना तो दूर रहा, उसकी भावना (स्मरण) भी नही कर सकोगे।

(९७१) मैं उच्चकण्ठ से प्रतिज्ञा करके बोल रहा हूँ मंत्र को शेष (समाप्त) कर सको तो तुम जीवन मुक्ति लाभ करोगे, करोगे, करोगे ही।

(९७२) जब तब जहाँ तहाँ मंत्र जप करने से कोई बाधा नही है। अविराम मंत्र जप करो, शान्ति तुम्हारे अन्दर बाहर नृत्य करेगी; अशान्ति बोल के कुछ नही रहेगा।

(९७३) ब्रह्म वा परमात्मा लीला करने के हेतु बहुत रुप धारण करते हैं, जब वे अविद्या के प्रभाव से आत्मविस्मृत हो जाते हैं, उस समय उनका नाम होता है जीवात्मा ।

ओंकार आत्मा

(९७४) ॐकार और आत्मा एक ही ब्रह्म सभी एक परम पुरुष के नाम हैं उनकी इच्छा हुई बहु होऊँगा, जन्म लूँगा इसीसे वे बहुरुप धर के लीला कर रहे हैं ।

(९७५) जो जितना शास्त्र - निष्ठ होगा वह उतना ही अग्रगति लाभ करेगा ।

(९७६) वाक् रुप से श्री भगवान ही खेल करते हैं । जो जितना अधिक बात करता है, वह भगवान से उतना ही दूर चला जाता है ।

(९७७) प्रकृत प्रेम होता है, निष्काम, वह प्रतिदान नहीं चाहता ।

(९७८) चेष्टा करके कामनाशून्य नही हो सकते - नाम करते करते मन - प्राण को

भर दो - तब कामना के लिये हृदय में स्थान ही नहीं रह जायेगा ।

(९७९) हम लोग स्वप्न राज्य में निवास करते हैं - किस समय यह सुख स्वप्न टूट जायगा इस का कुछ स्थिर नहीं; सत्य केवल भगवान का नाम - दृढ़ भाव से नाम आश्रय करके रहना ही प्रकृत पुरुषार्थ ।

(९८०) जप, ध्यान, तपस्या उनके अग्रूदत हैं, वे अपने से पहले ही इन सबको भेजकर भक्त के हृदय को परिष्कार कर लेते हैं - मनुष्य कुछ भी नहीं करता ।

(९८१) श्री भगवान की पूजा का प्रधान उपचार आँख का आँसू ।

(९८२) माताओं का अपने स्वामी से प्रेम और भगवान से प्रेम एक ही बात है। स्वामी ही भगवान ।

(९८३) आहार भेद से, बीज भेद से - एक ही पिता माता से सत् एवम् असत् संतान जन्म लेती है ।

(९८४) मनुष्य एक बार में ही कूद कर उठ नही सकता, शास्त्र - पथ पर चलने से ही शान्ति लाभ करता है ।

(९८५) मौन लेने से चित्त अन्तर्मुख होता है, बाह्य के संग फिर ताल मेल रक्खा नहीं जा सकता ।

(९८६) मन को सरस करने के लिये नित्य पाठ करना होता है - ऐसा ग्रंथ जिससे मन पिघल जाय । सीताराम रोज ही नाटक पढ़ता है, पढ़ने के साथ साथ रोमांच हो जाता है - ध्यान से भी पाठ में अधिक आनन्द पाता हूँ ।

(९८७) जब तक पूर्व दुष्कृत रहता है, तब तक मनुष्य जप आदि में आनन्द न मिलने पर भी जप व्यर्थ नही होता, किये जाओ, अच्छा लगे या न लगे - आशा करता हूँ कि माँ की कृपा का अनुभव करोगे ।

आहार व शरीर रक्षा

(९८८) शरीर रक्षा के हेतु आहार, शरीर रक्षा के उपयोगी आहार करना सब का कर्तव्य है । दुर्बल होने से नही चलेगा ।

(९८९) देह रहने पर ही भगवान के दर्शन अन्य जो कुछ। कल उपवास किया परसों जप करना भी असम्भव, उसके अगले दिन उठने की भी शक्ति नहीं रहेगी। मिताहार करना ही अच्छा।

(९९०) पिता शरीर दान करते हैं, गुरु ज्ञान दान करते हैं - इसी कारण दुःख-सागर-संसार में गुरु से गुरुतर और कोई नहीं है।

(९९१) सकल चेष्टा, उद्यम त्याग करके, मन्त्र में एकाग्र होने के लिये प्राणप्रण से चेष्टा करो ! रोग, शोक, दुख, ज्वाला, अभाव कुछ भी नहीं रहैगे। रह जायगा केवल भूमा सुख, निरतिशय परम - आनन्द।

(९९२) दुर्लभ मानव जन्म पाया है, गुरु-कृपा करके मन्त्र दिया है, उसी मंत्र कल्पतरु के पास जो चाहोगे वही मिलेगा। धर्म - अर्थ - काम - मोक्ष - तुम्हारा मन्त्र तुम्हें दान करेगा।

(९९३) ऐसा मानव - जन्म - किसी प्रकार व्यर्थ न हो जाय। अरे भोग ! कुत्ते की योनि में, सुअर की योनि में जन्म में भी भोग मिलता है। किन्तु मन्त्र नहीं मिलता,

मन्त्र पाया है – "मननात् त्रायते" मनन करने से ही त्राण।

(९९४) मन्त्र शेष होते ही तुम देखोगे कि तुम यह साड़े तीन हाथ के खाँचे के रोग, शोक, पाप, ताप आकुल अपने को भूले हुये पक्षी नहीं हो, तुम समुद्र की भाँति गंभीर, आकाश की भाँति महान हो गये हो। तुम्हारे सम्मुख, पीछे, दाहिने, बाँये, और उर्ध्व व अधः में आनन्द नृत्य कर रहा है। तुम्हारे दसों दिशाओं में आनन्द की प्राचीर खड़ी हो गयी है। तुम आनन्द सागर में डूब गये हो।

(९९५) समाप्त करो पथिक ! रोओ नहीं, शेष करो, मंत्र शेष करो। मंत्र का साधन अथवा शरीर का पतन बोलकर एकबार प्राणपण से चेष्टा करो जिससे मन्त्र शेष हो जाय। मैं शपथ करके बोल रहा हूँ – मन्त्र शेष होते ही तुम परमानन्द पाओगे – पाओगे ही पाओगे।

(९९६) सुस्वादु अमृत पान के पश्चात जिस प्रकार और कुछ पान करने की

प्रवृत्ति नही रहती उसी प्रकार इस गीता के तत्व को जान लेने के पश्चात् जिज्ञासु को और कुछ जानना बाकी नहीं रहता ।

इन्द्रिय अपव्यवहार

(९९७) बिच्छू गाछ रोपने पर उसमें चीनी नहीं होती, बबूल गाछ रोपने पर उसमें आम नहीं होता । सृष्टि का प्रवाह रक्षा के लिये जो इन्द्रिय भगवान ने दी है उसका अपव्यवहार करने से जलना होगा, जन्म जन्मातर तक यन्त्रणा भोगनी होगी ।

(९९८) जितने पाप हैं, गुप्तेन्द्रियों के असंयम के समान दूसरा पाप नही है । ऐसी कोई व्याधि नहीं है जो असंयमी को सुलभ न हो ।

(९९९) जो हतभाग्य ब्रह्मचारी माताओं के साथ हँसी, ठठा गल्प करते हैं, उनको बचाने वाला जगत में कोई नहीं है ।

(१०००) राम राम गर्जना सुनकर मन भयभीत होकर स्त्री चिंता त्याग करेगा, स्त्री चिंता निकलो निकलो बोलने से मन

से नही निकलती, जब स्त्री चिंता मन में आये उसी समय प्रणाम करके कृतांजली पुट, बोलेगा - है राम ! तुम्ही स्त्री मूर्ति धारण करके आये हो, तुम्हें प्रणाम करता हूँ, बस्। स्त्री चिंता कहाँ चली जायेगी, समझ भी नही पाओगे ।

नशा

(१००१) जो नशा करता है, वह भगवान नही पायेगा - जिसे जगत का जो काई भी आकर्षण है, वह भगवान से बहुत दूर है। दिवा रात्रि उठते, बैठते, खाते सोते राम राम करो। नशा छूट जायेगा ।

प्राण-सूर्य गति सम्बन्धक आहार

(१००२) सबका वाह्य प्राण है सूर्य। अमावस्या और पूर्णिमा को सूर्य की गति के कारण रक्त दुष्ट होता है। वात् प्रभृति व्याधि प्रबल होते हैं ।

(१००३) प्रतिपदा के दिन सूर्य की गति कुम्हड़े पर पड़ती है। कुम्हड़ा विकृत हो जाता

है – कुम्हड़ा खाने से अस्वस्थ हो जाता है ।

(१००४) अष्टमी तिथि के दिन सूर्य की गति नारियल को दूषित करती है इससे मेधा विकृत होता है इसी कारण अष्टमी तिथि को नारियल खाने से मूर्ख हो जाता है ।

(१००५) त्रयोदशी के दिन सूर्य की गति बैगन पर पड़ती है । शुक्र को दुष्ट कारक जीवाणुओं का आविर्भाव होता है । इससे पुत्र हानि भी होती है ।

(१००६) सड़ा गला पचा शास्त्र की बात न लेने से तो इतने रोग, इतने अभाव, ग्राम ग्राम में अस्पताल ।

(१००७) विज्ञान ने केवल भोग की वस्तुओं का संवाद दे करके ज्वाला बढ़ा दी है । राम, राम, शान्ति बाहर में नही है । शान्ति अन्दर में है । भीतर प्रवेश करने का मंन्त्र है राम, राम करना ।

(१००८) ऐसे कोई लोग नही हैं जिसे शारिरिक वा मानसिक रोग नही

है । वा किसी न किसी प्रकार का अभाव नहीं है । इसीलिये सबको ही राम राम करना प्रयोजन । राम नाम माने भगवान का नाम । जिसका जो गुरुदत्त नाम, उसी नाम को करने से वह गन्तव्य स्थान तक पहुँचने में समर्थ होगा ।

(१००९) भक्त जिस समय दर्शन के हेतु सब कुछ त्याग करता है यहाँ तक कि प्राणों की ममता तक विर्सजन करके पुकारता है, तब वे भी स्थिर नहीं रह सकते, दर्शन देते हैं- वर देते हैं ।

(१०१०) जो ज्योति और नाद की उपासना करते है, वे लोक के दर्शन करने योग्य एवं ख्याति सम्पन्न हो जाते हैं ।

(१०११) किसी साधु के प्रति लोगों का स्वतः ही आकर्षण हो रहा है । यह देखने पर समझना चाहिये कि उस साधु ने ज्योति, नाद प्रभृति पाया हुआ है । एवं वे अनन्य भाव से भगवान की उपासना करते हैं ।

(१०१२) जो वाह्य वा मानसिक जप सर्वदा करते हैं, वे जीवन्मुक्त हैं ।

जीवन मुक्त का दृष्टिपात

(१०१३) जीवन मुक्त पुरुष एकबार यदि ताककर देख ले तो मनुष्य की तो बात ही क्या, पशु-पक्षी के भी कोटि जन्मार्जित पाप नष्ट हो जाते हैं।

सहज - साधन प्रणाम

(१०१४) भगवान को सहज में पाया जा सकता है। प्रणाम - प्रणाम - केवल प्रणाम कर सके तो और कुछ नहीं करना पड़ता। श्री भगवान गीता में बोले हैं - "माम् नमस्कुरु"।

१०१५) ऐसी सहज साधना तो और कही सुनी नहीं; मेरी इच्छा होती है कि दौड़कर सबके पास जाऊँ और बोलूँ - अरे ! तुम लोग प्रणाम करो। इससे ही तर जाओगे।

(१०१६) संसार - रोग का मूल है, 'अहं' 'मम' 'मैं' 'मेरा'। जिसका जितना अधिक "मैं, मेरा" है। उसको उतना ही दुःख।

(१०१७) सब मेरा – इसके मूल में है – 'मैं देह'। नमः न मम नमः – एक मकार लोप हो गया है। यह देह न मम – मेरा नहीं है। इस देह का उत्सर्ग करने के लिये ही इतना नमो नमः करना।

(१०१८) तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः ॥

सदा इस श्लोक के मर्म को हृदयंगम करके उसका अनुसरण कर आचरण करने की चेष्टा करनी होगी।

(१०१९) ब्रह्म विज्ञानी अथवा ईश्वर दर्शनकारी को कर्म त्याग करना नहीं होता। कर्म आप से आप गलित हो जाते हैं।

(१०२०) जो बनावटी ज्ञानी, उनका ढोंग चलता नहीं; वे कभी पैसा पैसा करते पैसे के पीछे, कभी कामिनी के पीछे, कभी प्रतिष्ठा के पीछे कुत्ते की भाँति भागते रहते हैं। उनके दुःख से सियार कुत्ते भी रोते रहते हैं।

त्याग

(१०२१) त्याग - त्याग -त्याग के मध्य भोग नहीं रह सकता ।

(१०२२) वर्णाश्रम धर्म स्वेच्छा से त्यागकर समता, उदारता आदि का दिखावा करने पर बेचारों की दुर्गति की सीमा नहीं रहती । रोग, शोक, अभाव, ज्वाला, यन्त्रणा और पारिवारिक अशान्ति से मन के उदण्ड नृत्य के कारण वे बेचारे भागते फिरते हैं ।

(१०२३) जो लोग शास्त्रों की उपेक्षा करते हैं, उनको शान्ति देगा कौन ? वे शान्ति नहीं पा सकते नही पा सकते ।

(१०२४) साधुओं के पक्ष में लोकसंग, सम्मान, प्रतिष्ठा विष की भाँति विपदजनक है । जो मूर्ख साधू लोकसंग नहीं त्याग कर सकता, उसकी दुर्गति की सीमा नहीं है ।

(१०२५) चुम्बक आकर्षित करेगा ही, घी गलेगा ही, इस कारण साधुओं

को सावधान रहना दरकार, सावधान न होने पर ही जय जय राम सीताराम, मुख पर चूना - स्याही ।

सेवा

(१०२६) प्रियतम ठाकुर की सेवा छोड़कर भक्त और कुछ धर्म, अर्थ, काम मोक्ष नहीं चाहता, केवल सेवा ही उसकी काम्य ।

"आसिब जाइब चरण सेवीब" इससे ही भक्त कृतार्थ होता है ।

(१०२७) सेवा ही उर्ध्व लोक में ले जाती है । सेवा ही 'अहंता', 'ममता' नष्ट करके देहाभिमान समाप्त कर आत्म साक्षात्कार कराती है । सेवा ही उस प्रेममय प्रियतम के प्रत्यक्ष दर्शन करा देती है ।

(१०२८) मात्र सेवा, सेवा, स्थूल में सेवा, मानसी सेवाकारी सेवक जान ही नहीं पाता कि वह संसार - पाश से कब और कैसे मुक्त हो गया ।

(१०२९) जब यह सब कुछ भगवत् – शरीर है तो यह तेरी देह भी उन्हीं का शरीर है। तब भक्त आनन्द से पूर्ण हो जाता है। देह की प्रशंसा से भयभीत नहीं; देह प्रतिष्ठा भगवत्–प्रतिष्ठा समझकर आनन्द करता है जिसको इतने दिन तक मेरी देह है यह समझता था वह तो श्री भगवान का लीला – विग्रह है, अहो ! कैसा आनन्द है ! कैसा आनन्द है !

(१०३०) दीक्षा सबको ही लेनी होती है, दीक्षा न लेने पर हाथ का जल शुद्ध नहीं होता। स्वामी नारायण है यह कहने से ही तो वह नारायण नहीं हो जाता माँ, दीक्षा लेकर साधना करके तब इस ज्ञान में स्थिति लाभ करनी पड़ती है।

(१०३१) जो लोग सात्विक हैं उनका स्वभाव ही होता है, सुख्याति करना और जो लोग असत् हैं उनका स्वभाव होता है निन्दा करना इस कारण इन दोनों को सुनकर हर्ष अथवा विषाद नहीं करना चाहिये।

(१०३२) जो अच्छा है उसे और क्या अच्छा किया जायगा ? यदि एक भी माताल, एक जन चरित्रहीन सत्-पथ आश्रय करे तो उससे जगत का यथेष्ट कल्याण होगा ।

(१०३३) असयंमी, यथेच्छाचारी मनुष्य कितने दिन स्फूर्ति कर सकता है अधिक से अधिक पाँच सात वर्ष। उसके पश्चात् सब ठंडा, पेट गया रे बाबा ! टी० बी० अस्पताल खोजता है । पागल खाने में जाकर धेई धेई करके नाचता है ।

परमाणु - संक्रमण

(१०३४) पास पास बैठने से एक देह के परमाणु अन्य देह में संक्रमित हो जाते हैं । महाभारत में कथित है - कि स्त्री के संग एक आसन पर बैठने पर तीन दिन उपवास करना पड़ता है । काम के परमाणु देह को इस प्रकार आच्छन्न कर डालते हैं, तीन दिन उपवास करने से शरीर शुद्ध हो जाता है ।

(१०३५) मंत्र के परमाणु जिस प्रकार देवताओं को आकर्षित कर लेते हैं, उसी प्रकार स्त्री पुरुष के परमाणु परस्पर एक दूसरे को आकर्षित करते रहते हैं ।

(१०३६) उच्च स्वर में नाम कीर्तन करने से खराब परमाणु पलायन – पथ में भागने के लिये बाध्य हो जाते हैं ।

(१०३७) घूना, धूप जलाने से सात्विक परमाणु आकर्षित होते हैं ।

(१०३८) गंगा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, सिन्धु, कावेरी, कृष्णा प्रभृति नदी समूहों के सकल परमाणु सात्विक परमाणु है । इन सब नदियों के तीर वास करने से, नदी का पुण्य जलपान करने से मनुष्य अवश भाव से सात्विक प्रकृति लाभ करता है ।

(१०३९) सात्विक परमाणुओं के इकट्ठा होके ही तुलसी गाछ (पौधा), बेल गाछ, पीपल, वट गाछ, पैदा हुये हैं । तुलसी गाछ और बेल गाछ की सेवा करने से, तुलसी तले और बेल तले रहने से अति शीघ्र मनुष्य निष्पाप हो जाता

है। तुलसी - रस पीने से मनुष्य प्रचुर सत्वगुण लाभ करता है।

(१०४०) जहाँ सद्भाव, सद् चिन्तन, सद् आलोचना होती है सकल सात्विक परमाणु वहाँ अविचलित भाव से स्थिर रहते है, राजस, तामस परमाणुओं को आने नहीं देते; वे आने पर भी सात्विक परमाणुओं में डूब जाते हैं।

(१०४१) गाय, हरिन, मयूर प्रभृति व केला में, केला, आम के पेड़ में सात्विक परमाणु यथेष्ट रहते हैं। मटरदाल, मूँगदाल, गाय का घृत, दुग्ध - इनमें भी सात्विक परमाणु प्रचुर।

(१०४२) तुलसी, रुद्राक्ष, स्फटिक आदि की माला सत्वगुण बढ़ाती है उर्ध्वपुण्ड्र अथवा त्रिपुण्ड्र सात्विक परमाणुओं को आकर्षित करते हैं।

आसन

(१०४३) केवल वस्त्रासन तपस्या प्रभृति के लिए हानिकर है। चर्म अथवा कम्बल के ऊपर बिछाकर तपस्या करने से व्याधि नाश होती है।

(१०४४) कुशासन पर बैठकर जप करने से आयु वृद्धि होती है। व्याघ्रचर्म पर मोक्ष, हरिन के चमड़े पर पुत्रवान, एवं कम्बल पर बैठकर जप करने से उत्तम सिद्धि लाभ होता है।

विविध उपदेश

(१०४५) जब तक साधक इष्ट दर्शन लाभ नहीं कर लेता तब तक उनकी क्षति निश्चय है। किन्तु इष्ट दर्शन के पश्चात् यदि श्री भगवान के आदेश से मंत्रदान करे, जीवों के कल्याण के हेतु उस मंत्रदान से उनकी क्षति नहीं होती।

(१०४६) सकल प्रकार के साधनों के फल समूह केवल शुद्ध वाचिक जप द्वारा ही सिद्ध हो जाते हैं।

(१०४७) गुरु के प्रसाद से भक्तिमान शिष्य सत्वर सिद्धि लाभ करते हैं।

(१०४८) श्रीमद् विशुद्धानन्द परमहंस बाबा ने कहा है - प्याज बड़ी खराब चीज है। वह गोमांस के समान है।

(१०४९) मनुष्य जो खाता है, उसके तीन भाग होते हैं। एक से शरीर बनता है एक भाग मल मूत्र होके बाहर निकल जाता है और एक से होता है मन। प्याज, लहसून, हंस, मुर्गी, मछली खाने से जो शरीर होता है उस शरीर के द्वारा सत्कर्म करने की क्षमता नही रहती। वह केवल दुष्कर्म करता है। और अखाद्य भोजन के द्वारा जो मन तैयार होता है उसमें सात्विक चिंतन करने की क्षमता नहीं रहती। केवल कुचिंतन करता है।

(१०५०) शास्त्र - पथ त्यागने के कारण ही आजकल इस देश के वासियों में ज्वाला - यन्त्रणा, रोग, शोक बढ़ गया है।

(१०५१) वर्तमान में सबका मुख्य लक्ष्य है 'अर्थोपार्जन' जिसके द्वारा यन्त्रणा बढ़ती जा रही है और लक्ष्य भूला मनुष्य भाग रहा है नाश की ओर।

(१०५२) आहार शुद्धि न होने पर मन की चंचलता नहीं जाती। इसी कारण जो लोग स्वास्थ्य, आयु, बल और श्री

भगवान को चाहते हैं उनका अवश्य कर्तव्य है सात्विक आहार करना।

(१०५३) जो लोग भगवान को चाहते हैं उनमें यदि एक कानी कौड़ी के जितनी भी आसक्ति रह जायेगी तो भगवान नहीं पायेंगे। सर्वत्याग न करने पर कोई उन्हें पा नहीं सकता, नहीं पा सकता नही पा सकता।

(१०५४) साधन राज्य में सबसे पहले जिहवा को जय करना पड़ता है। जिहवा को न जीत सकने से और किसी इन्द्रिय को जीत नहीं सकते। लवण, मिर्च, खट्टा, कटु, कसैला प्रभृति षट् रस ग्रहण के लिये जिहवा लोलुपरहती है। इस कारण साधक मात्र का कर्तव्य है कि लवण, मिर्च, खट्टा इत्यादि का त्याग करैं सर्वतोभावेन त्याग करें।

(१०५५) गुरु गुरु करके भूमि शोधन की चेष्टा करो, मिट्टी तैयार हो जाने पर ही यथा समय बीज पाओगे। गुरु कृपा करके ग्रहण कर लैं तब और कोई अन्य चिंता नहीं करनी होगी।

(१०५६) जिनके (स्मरणातीत काल से) एक मास का अशौच माना जाता रहा है, जिनके शरीर में क्षत्रिय वैश्य के विन्दुमात्र भी संस्कार नहीं है जो समस्त संस्कारशून्य है वे लोग यदि आज क्षत्रिय वैश्य बनकर बारह दिन या पन्द्रह दिन का अशौच पालन करें तो उनके अशौच के मध्य श्राद्ध करने के कारण पितरों की प्रेतत्व से विमुक्ति नही होगी । वे प्रेत होकर वंशधर-गणों को अभिशाप देंगे ।

(१०५७) भेड़ के बालों से कम्बल बनता है, वह शुद्ध होने पर भी क्योंकि एक जीव के बाल काटकर, उसे कष्ट देकर तैयार किया जाता है इस कारण वैष्णवगण ग्रहण नहीं करते थे । श्रीमद् महाप्रभू के कंथा के अंश आज भी 'गम्भीरा' के भीतर मैं है ।

(१०५८) किसी स्थान जाकर सबसे पहले अपने लिये अच्छा स्थान चुन लेना अथवा अपने लिये अच्छा घर कमरा प्रभृति घाँट लेना भी कलियुग का उपहास इससे यह बोध कि मैं- यह देह हूँ

बढ़ जाता है । हमारे इष्ट देवता यह भाव दूर कर देता है । 'सब मेरे इष्ट हैं" तब मैं अच्छा स्थान, अच्छा घर इत्यादि लूँ किस प्रकार ?

(१०५९) पाठ सुनते सुनते उठ जाने से ब्रह्महत्या का पाप होता है । जिन्हें पाठ के समय बीच में उठने का दरकार है, वे लोग भीतर प्रवेश न करें ।

(१०६०) जो लोग ब्रह्मचर्य रक्षा कर पाते है उनके पक्ष में एक एक अन्न भी पिस्ता, किशमिश, दुग्ध, घृत का काम करता है ।

(१०६१) महाभारत भारत का प्राण है, जो कोई महाभारत का पाठ करेगा वह कृतार्थ होगा ही । धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष महाभारत में इन चतुर्वर्ग के साधन की बात विशेष भाव से कही गई है । महाभारत आदि गुरु मुख से सुनना पड़ता है ।

(१०६२) मैंने जिनके चरणों में आत्मसमर्पण किया है, वे जैसा आदेश करेंगे वैसा

ही करूँगा – यही होता है शिष्य का कर्तव्य, अपनी इच्छानुसार चलना दुर्बुद्धि है ।

(१०६३) हरे कृष्ण नाम वैदिकी तांत्रिकी, पौराणिकी मन्त्र । श्री महाप्रभू इस नाम का प्रचार किया है । यह कलि का तारक नाम ।

(१०६४) शिशु जब माँ के पेट में रहता है उस समय जिन्होंने उसके खाने की व्यवस्था की है इतने दिन जो चलाते रहे हैं, क्यों तुम उन भगवान के ऊपर विश्वास छोड़कर व्याकुल हो रहे हो ? क्या तुम जप आदि कुछ नहीं करते हो ? करने पर इसप्रकार वृथा व्याकुलता आती नहीं ।

(१०६५) चलने के पथ पर बहुत बाधायें विघ्न आते हैं । आयेंगी – पुकारते पुकारते अग्रसर होओ । नाम मत भूलो ।

(१०६६) स्व-पत्नी अतिरिक्त जगन्माता यह बात मन में सतत रक्खो । किसी प्रकार की भूल न हो, कितनी ज्वाला होगी जानते हो ?

(१०६७) केवल चित्त अन्तर्मुख होने से मनुष्य अपरिसीम आनन्द लाभ करता है। प्रत्येक मनुष्य का हृदय - कमल आलोक से - आनन्द से - ध्वनि से भरा है। बाहर का मोह दलित करके लौट आओ अपने घर में।

(१०६८) पुण्य पाप न करने से मनुष्य देह नहीं होती है। पुण्य के फल से साधन - भाव जाग्रत हुआ था, पाप के फल से मन नीचे गिर गया - पुनः उठेगा। साधन राज्य में गंगा के ज्वार भाटे की भाँति उठना - गिरना सभी का होता है। गिरने पर और आग्रह बढ़ जाता है।

वर्तमान समस्या

(१०६९) वर्तमान समस्याओं का समाधान केवल धर्म का अवलम्बन द्वारा ही होगा, जो आग जल रही है वह आग, आग के द्वारा नहीं

बुझेगी यदि धर्म–मेघ से संयम बारि की अजस्र धारा वर्षित होगी तो आग बुझ सकती है नहीं तो कोई सम्भावना नहीं ।

(१०७०) अस्पताल क्यों होते है ? अधर्म के कारण अस्पतालों की सृष्टि । जितना जितना व्यभिचार बढ़ रहा है उतना उतना अस्पतालों का प्रयोजन होता है ।

सेवा - निष्काम कर्म व चित्त शुद्धि

(१०७१) मनुष्य के जीवन का लक्ष्य होता है भगवत् साक्षात्कार । श्री गीता में हम पाते हैं चित्त शुद्धि भिन्न भगवद् प्राप्ति वा "सब भगवान" यह ज्ञान लाभ नहीं होता । चित्त शुद्धि हेतु निष्काम कर्म प्रयोजन ।

(१०७२) निष्काम कर्म के त्रिविध भेद हैं २) भगवद् आज्ञा के बोध करके शास्त्रीय व लौकिक समस्त कर्म

सम्पादन २) - भगवद् सेवा ३) कर्तृत्वहीन होकर भगवद् प्रेरणा से समस्त कर्म कर रहा हूँ । मैं किसी भी कर्म का कर्ता नहीं हूँ। इस रुप से कर्म करते करते संसार छूट जाता है ।

(१०७३) उपासनाहीन जो सेवा रुप कर्म उससे चित्त शुद्धि नहीं हो सकती । स्थिर भूमि का स्पर्श नहीं पाता । कारण कुछ दिन कर्म करने के पश्चात् चित्त नीचे उतर आता है ।

(१०७४) मात्र सेवा - कर्म करने से नहीं होगा, नियमित इक्कीस हजार छः सौ जप करना होगा । क्या विरक्त हो, क्या गृही हो, जो लोग उस प्रकार करने लगते थे उन्होंने अनुभूति पाकर आनन्द लाभ किया । जो लोग केवल सेवा में ही लगे रहे, कुछ दिन बाद वह सेवा नहीं रही, नीचे उतर आये । इसी भाव से कोई कोई

विरक्त बाबा लोग पथभ्रष्ट होने लगे ।

(१०७५) जब नाम का आश्रय कर लिया है तब कोई चिन्ता नहीं। संसार समुद्र – तरगें रहेगी ही ।

(१०७६) खूब नाम करोगे । जितना नाम उतना ही आनन्द ।

(१०७७) हमारी बात – हम किसी का भी किसी प्रकार का दोष नहीं देखेंगे, यदि कोई हमारे दोष देखेंगे निन्दा करेंगे तो ऐसा होने पर वह उनकी कृपा है । ऐसा मन में समझेंगे जिस हेतु उन्होंने निन्दा करके वे हमारे पाप ग्रहण कर रहे हैं – उस कारण वे हमारे प्रणम्य हैं ।

(१०७८) उठते बैठते खाते सोते सर्वदा राम राम करने से उनकी कृपा लाभ की जा सकती है। इस सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं है । भगवत् कृपा प्रार्थी यह परीक्षा करके देख सकते हैं ।

(१०७९) ओरे माँ, मनुष्य कितने कर्म लेकर आता है। वे सब कर्म समूह क्षय करने

तो होंगे । केवल नाम करते करते कर्म-क्षय करे ।

(१०८०) केवल चेष्टा करो जैसे समय वृथा न जाय । पाठ में हो, नाम में हो लीला में वा सेवा में हो । जो कुछ भगवान की एक ना एक कुछ सेवा लेकर मन सर्वदा रहे ।

(१०८१) प्रेम बोलो, चाहे जो कुछ कहो, कुछ बाहर दिखाने का नहीं है। सब अंतर की चीज है । अंतर में रखना ।

(१०८२ जितना निज को दबाकर रख सकोगे, उतने ही शीघ्र आनन्द राज्य में पहुँच जाओगे । भाव बाहर निकल जाने से दुर्बल कर देगा ।

(१०८३) सभी भगवान का शरीर, यही मन ही मन करके सबको प्रणाम करने का अभ्यास करना । वे ही सब

सजे हैं । मनुष्य पापों के फल से शत्रु - मित्र, भला, वुरा देख रहा है ।

(१०८४) सहज, सरल, सुगम पथ - नाम संकीर्तन

मेरे नाम की प्रभा वेद वेदान्त के भी पारगामिनी है । जो लोग सर्वदा नाम करते रहे वे भी त्रिजगत् पूज्य होते है । उनकी कृपा से भी पापी तापी का उद्धार हो जाता है ।

जितना नाम उतना आनन्द ।

जितना नाम उतना आनन्द ।

जितना नाम उतना आनन्द ।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ॥

प्रथम खण्ड समाप्त

जयगुरु

अभय वाणी

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

मा भै :

अरे भक्त ! तुझे कोई भय नही, तु केवल नाम ले, मैं भय का भय, भीषण का भीषण, सब विपत्तियों का नाश करनेवाला, सदा तेरी विपत्तियों का नाश करता हुँ। अरे ! "मैं तेरा"-कहकर जो मेरी शरण में आता है, उसे अभयदान करना मेरा व्रत है। आकाश टूट कर पृथ्वी पर गिर पड़े, प्रलय की अग्नि जल उठे, साथ ही कोटि वज्रपात होने लगें, भयंकर महाझंझाबात से विश्व व्रह्माण्ड कौंप उठे, सातों समुद्र उमड़ पड़ें ; तथापि रे प्रियतम ! डर नही। मैं तुझे छाती से लगाकर तेरी रक्षा कर रहा हुँ,- यह बात मत भूल, "मैं हूँ तेरा अरे मैं हूँ तेरा मा भैः

जयगुरु

मा भैः, मा भैः, मा भैः !

जयगुरु

अभय वाणी

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

मा भै :

अरे प्रियतम ! तू क्यों डरता है ? अविराम नाम ले, तुझे कोई चिन्ता नही। मेरे ही डर से अग्नि प्रज्वलित होती है, सूर्य ताप देती है ; इन्द्र वायु, मृत्यु अपना-अपना कार्य करते हैं। मेरे शरणागत भक्त की छाया स्पर्श करने की शक्ति किसी में भी नही है। अधिक क्या नित्य देहधारी भक्त को मैं भी नाश नही कर पाता। मेरा सुदर्शन चक्र भक्त की सर्वदा रक्षा करता है। कोई बात न सुन ; किसी के लिये मत सोच ; निर्भय होकर उच्च कण्ठ से नाम ले। कलियुग में मैं नाम रुप से आया हूँ। नाम ले। तेरा सब भार मैंने ले लिया।
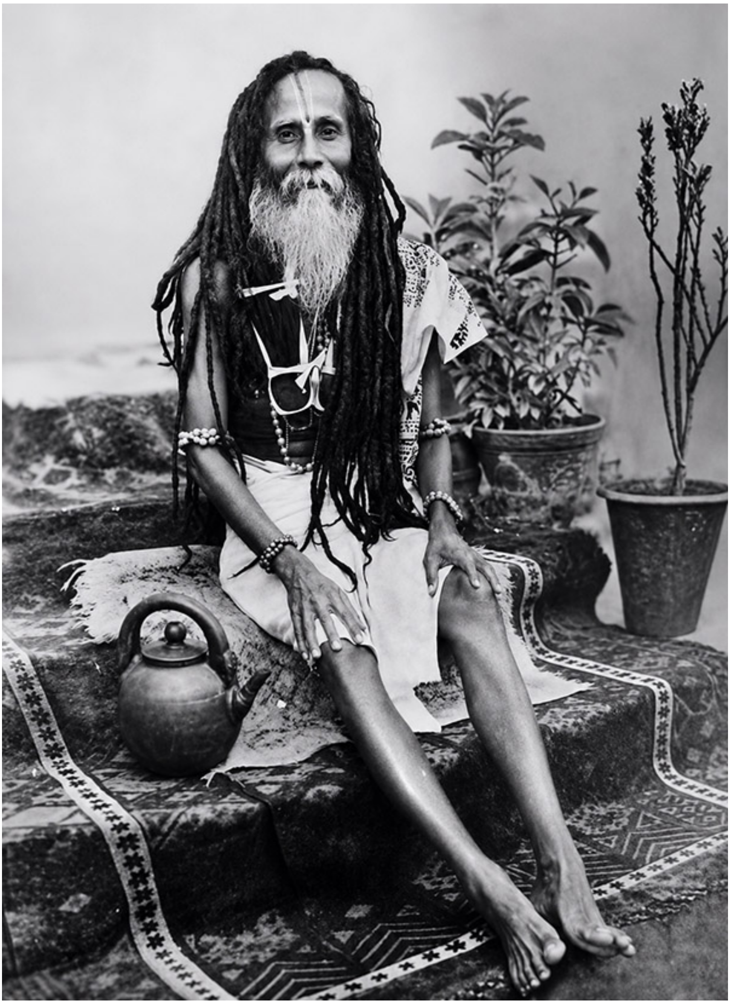
मा भैः, मा भैः, मा भैः !